कि

किसुन संकल्प लोक
सुपौल (बिहार)

किसुन समग्र, भाग-1
रामकृष्ण झा 'किसुन'

कि

किसुन समग्र

भाग– 1

रामकृष्ण झा 'किसुन'

किसुन समग्र-1

किसुन समग्र-1

रामकृष्ण झा 'किसुन'

किसुन संकल्प लोक
सुपौल

किसुन समग्र-1

© केदार कानन

दोसर संस्करण : 2022

मूल्य : 400/- रुपए

आवरण : श्री सीताराम
अनुप्रिया

प्रकाशक : किसुन संकल्प लोक, सुपौल

संपादक : केदार कानन
रमण कुमार सिंह

ले-आउट : हर्ष कंप्यूटर्स, दिल्ली-86 (मो. 7011503212)

मुद्रक : आर.के. ऑफसेट प्रोसेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
- किसुन कुटीर, गुदरी बाजार, सुपौल-852131 (बिहार)
- शेखर प्रकाशन, प्रथम तल, भुवनेश्वर प्लाजा, न्यू मार्केट, पटना-800001

KISUN SAMAGRA-1 : A Collection of Maithili and Hindi poems *by* **Ramkrishna Jha Kisun.** Edited by Kedar Kanan and Raman Kumar Singh.
Price : Rs. 400

बस, औपचारिकता

किछु तथ्यक उद्घाटन आवश्यक लगैत अछि।

बाबूजी 1937 सँ रचनाशील भेलाह आ से अगबे हिन्दी मे। अनेक पत्र-पत्रिकाक संपादन कयलनि। 1948 सँ दैनिक आर्यावर्त सँ जुड़लाह संगहि तत्कालीन समाचारपत्र सभ सँ सेहो हुनक घनिष्ठ जुड़ाव रहलनि। 1949 मे हुनक बाल कविताक एक संग्रह 'आओ गाएँ' आ 1950 मे हुनक प्रौढ़ कविताक एक संग्रह 'इन्द्रधनुष' नाम सँ हिन्दी मे प्रकाशित भेलनि। एहि संकलन मे परिशिष्ट मे जे कविता सभ अछि, से तत्कालीन पत्र-पत्रिका सँ संकलित कयल गेल अछि। एहि सबहक अतिरिक्त हुनक हिन्दीक बीस पच्चीस टा आरो कविता हेतनि, जे अनेक प्रयत्नक बादो उपलब्ध नहि भ' सकल।

तेहत्तरि बर्खक बाद एहि दुनू कविता संग्रहक प्रकाशन भ' रहल अछि, से अवश्ये प्रीतिकर थिक। अग्रज विभूति आनन्द एहि दुनू पोथीक नामे कें शीर्षक बना देब' कहलनि—'आओ गाएँ इन्द्रधनुष'। आ कहलनि जे एहि मे लय छैक।

□

मैथिली मे हुनक 'आत्मनेपद' 1963 मे प्रकाशित भेल छलनि। फेर कालान्तर मे ओहि कविता संग्रहक संग हुनक अन्य कविता संकलित क' 'क्रमश:' नाम सँ मैथिली अकादमी, पटना सँ 1983 मे प्रकाशित भेल, जकर संपादन प्रो. मायानन्द मिश्रक संग हम कयने छलहुँ। तकरो आब उनचालीस बर्ख भ' गेल। किछु कविता ओहि संकलन मे नहि जा सकल छल। ओना संकलन एखनो पूर्ण नहि भ' सकल अछि। कारण आधिकारिक रूप सँ बाबूजीक पहिल कविता मिथिला मिहिरक 31 मार्च 1945 अंक मे छपलनि। तकर बाद हुनक कविता उपलब्ध होइछ 1950 आ 1957 ई. क रचित। 1945 सँ 1957 धरि मे मात्र तीन गोट कविता उपलब्ध अछि।

आब मैथिलीक हुनक एहि कविता संग्रहक नाम—'प्रतिवादक स्वर' थिक, जे बादक हुनक कवि-मन:स्थितिक परिचायक थिक।

अस्तु, किसुन समग्र-1 केर प्रकाशनक पृष्ठभूमि मे संपूर्ण किसुन-परिवारक मनोबल आ उत्साह हमरा संग रहल अछि, तखने ई काज संभव भ' सकल अछि आ से प्रिय अनुज रमण कुमार सिंहक संग।

मैथिलीक सहृदय पाठक लोकनि लेल किसुन जीक मैथिली-हिन्दी कविता दीर्घ अन्तरालक बाद एक जिल्द मे उपलब्ध भ' गेल अछि, से संतोषक गप।

किसुन पुण्यतिथि
15 जून 2022

केदार कानन
मुम्बई

अनुक्रम

बस, औपचारिकता 5

प्रतिवादक स्वर

सौरभ 17
मलेरिया महिमा 18
शिशुसँ 19
स्वातंत्र्य-गीत 20
तथापि 24
देवता, दानव, अंतर आ असमंजस 28
कोशीक बाढ़ि 30
इज्जति कोन पदार्थ ? 33
सुधि-सागर मे 34
सब अहींक थिक 35
आत्मनेपद 36
मोन तथापि उड़ैत रहै अछि... 37
एक राति : एक गीत 38
विद्यापति-स्मृति-दिवस 39
उपलब्धि 44
असम्भाव्य 45
हे अपरिचिते 47
अन्तिमेत्थम् 49
एक पत्र; एक एप्रोच 51

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ केँ श्रद्धांजलि	53
एक साँझ : एक अनुभूति	55
जागरण-गीत	57
नववर्षक चारि प्रतिक्रिया	59
उद्घोष	61
वसन्त-गान	62
दू टा नव कविता	63
स्मृति	65
हमसभ श्रम भरिपूर करी	67
उमड़ि रहल मेघ-छन्द	68
चौरचनक चान	70
आह्वान	71
जीवनक ई क्षण	73
ओहि सपूतक करय आरती	74
पहिल शर्त्त	75
पैघ लोक	77
आबि गेल छथि पाहुन नवल वसंत	79
श्रद्धांजलि	81
सत्यान्वेषी	82
देवता आ पिरामिड	85
जयति जय गणतंत्र	86
ई उदास साँझ	88
पूर्णिमाक संध्या	89
आबहु तँ आउ	90
भादवक साँझ आ हम	91
प्रथम वर्षा आ हमर मन	92
ज्योति-याचना	93
बटोहीक व्यथा	95

समाधान	98
दीक्षा	99
युग-संदेश	100
सैनिकक पत्र	101
अयला नहि जीवन-सिंगार	103
गीत	104
बरिसातक भोर, साँझ, राति...	106
पत्रोत्तर	109
काल-घोष	111
जिनगी : चारि टा दृष्टिखण्ड	113
एकटा अकविता : अकालक मेघ	115
खंडित समन्वय	116
यात्राक सार्थकता	118
एक अ-कविता : तीन पाराग्राफ	120
एकटा अ-कविता : दुस्साहसी	122
मनुक्खक खोज	123
सत्ताक मद	125
पुरानक मृत्यु आ नव वर्षक जन्म	133
पतझार	135
मनुक्ख जिबैत अछि	136
निवेदित	138
अनिवेदित	140
दूटा कविता	143
बलात्कार	144
आत्महत्याक पूर्व	145
आत्महत्याक उपरान्त	147
एक: शब्द:...	149
दू टा कविता	151

चारि टा छोट कविता	152
खुटेसल	154
अनुत्तरित	156
जय-लिप्सा	158
एकटा सामयिक कविता	161
एकटा प्रत्याख्यान	163
स्मृति-विश्लेषण	165
कविताक विद्रोह	166
आत्मकथ्य	167
विश्लेषण	168
निर्वासित अपने देश मे	170
एकटा कसबानुमा गाम	172
अ विरोध	176
परिचय-अपरिचय	178
आवृत्ति...आवृत्ति	180
एकटा भावुक क्षण आ एकटा यथार्थ	182
किछु परिभाषा	185
प्रतिवादक स्वर	187
पीढ़ीक शीतयुद्ध	190
अव्यक्त प्रणय	192
कालजयी	194
पाँच फाँक	196
आजुक उत्तर	198
आक्रामक स्वर	200
खिस्सा-पिहानी	202
तीन टा टुकड़ी	204

आओ गाएँ इंद्रधनुष

दो शब्द *207*

प्रकाशक की ओर से *209*

प्रश्न 213

शैशव की स्मृति 215

फुलवारी 217

मोटा बैगन 220

जंगल 222

झूला 224

निर्झर 226

सपने के–से दिन 228

घटा 231

गीत 232

आओ गाएँ 234

प्रस्तावना *237*

दो शब्द *246*

प्रकाशक की ओर से *247*

वर याचना 249

कविता प्रेयसी से 250

मानव 251

तेरा प्यार 252

गीत 253

विकल उर की पीर हो तुम 254

जीवन : एक परिभाषा 255

युग बीता प्रिय रोते–रोते 256

मुझ से दूर	257
देव, लौटा लो यह उपहार	259
नादानी	262
नया संसार	263
सत्यं-शिवं-सुन्दरम्	265
परिचय	266
राही	269
पत्ते	271
अंतर्नाद	273
एक फूल की आत्मकथा	275
मैं कब रोया?	278
उपालंभ	279
जीवन का सुख है खोने में	281
फक्कड़	282
गीत	283
उस पार	284
अंतिम चाह	286
सूखा गुलाब	288
आज की दुनिया	279
बजी जंजीर	290
अभागे से	292
परिणाम	293
कल्पना	294
उद्‌बोधन	296
कामना	298
झोपड़ी	299
अनुसंधान	301
पागल	302

निराश 304
जीवन–नौका 306
मेरे तुम...! 308
क्यों फिर मुझको नाज न हो? 309
सिद्धि 311
कवि तुम को तो विष पीना है 312
कवि की कल्याणी 314
जिज्ञासा 316
गीत 318

परिशिष्ट

जयगान 320
सिंहावलोकन 321
जगी चेतना जन–जन की अवदात 323
प्रार्थना 324
हिंद की मचल उठी तलवार 325
उग रहा सूरज 327
पुरुष गीत 330
तीन छोटी कविताएँ 334
तीन कविताएँ 336
लेकिन, राजकमल जीता है 338
सर्वेषामविरोधेन 340
अता–पता 342
कुछ परिभाषाएँ 344
आत्मनेपद 347
विहान 348

प्रतिवादक स्वर

सौरभ

सौरभ, अपन मधुर संस्कृतिमय
सुरभि, करू वितरण संसार
परवशता-दुर्गन्ध-विमूर्च्छित
निजदेशक हो चिर-उद्धार

रचनाकाल : 1943
(हस्तलिखित सौरभ पत्रिकाक मुखपृष्ठ पर)

मलेरिया महिमा

जय जय जय शीत-ज्वर
लोक-शोक कारी

प्रथम अङेठी मरोड़
टूटै तनु जोड़-तोड़
हाफीक चलि पड़ै तोड़
स्वागत हो भारी। जय.।

होय पुनः विकट जाड़
काँपि उठै हाड़-हाड़
कट-कट-कट दाँत तार
करै स्वर्ग जारी। जय.।

ओढ़ना ओढ़ी अपार
तैयो जाड़क न पार
दर्द करै हा! कपार
आगम सरकारी। जय.।

छन-छन मे लगै प्यास
पीनहु नहि कम तरास
आबि जाय आस-पास
जखन शुभ सवारी। जय.।

तदुपरान्त चूपचाप
हाय, पुनः तीव्र-ताप
'आरौ बाप, आरौ बाप'
चिकरय नर-नारी। जय.।

एहि तरह चढ़य ज्वाल
कछमछ हो सतत काल-
लोक, आँखि लाल-लाल
हो जनु महकारी। जय.।

एहि तरह अपन कार्य
क' अपने अपरिहार्य
अनका दै अपन चार्ज
जाइ हे नरारी। जय.।

लोकक भार अंग-अंग
पीयर सन अपन रंग
'रामकृष्ण' करी तंग
हाय, हर्ष-हारी ? जय.।

(सातम पदक 'अनका' शब्द सँ प्लीहादि दिस संकेत अछि)

सौरभ : 1943

शिशुसँ

शीतलता लय चन्द्र किरणसँ तारकदलसँ लय लघुरूप।
विद्युतसँ अनुपम आभा लय रचल अहँक विधि मधुर स्वरूप।।
लय गुलाबसँ मनमोहकता कुन्द-कलीसँ मधुमय हास।
नव शिरीषसँ कोमलता लय भरल वसन्तक नव उल्लास।।
मृग-शावकसँ चंचलता लय पिकसँ ल' क' सुमधुर स्वप्न।
राजहंससँ चालि, मोरसँ ल' क' देलनि प्रिय नर्त्तन।।
एकत्रित कय छिड़िआयल सन देखि निखिल सृष्टिक सभ सार।
रचि क' मोहक मूर्त्ति अहँक शिशु! सुसफल भेल विधिक व्यापार।।

मिथिला मिहिर : 31 मार्च 1945

स्वातंत्र्य-गीत

आइ हमर अछि मस्तक उन्नत
बीतल जकरा हेतु अतीतक
दुखद शताब्दी विप्लवमय कत!

सिद्ध भेल अछि सत्य-साधना
सफल भेल अछि मन:कामना
करब एकर रक्षाहित सब मिलि
सकल विघ्न-बाधाक सामना

राष्ट्र-भालसँ कुटिल कलंकक
आइ दाग सब छूटि गेल अछि
युग-युगसँ जकड़ल दासत्वक
अप्रिय बंधन टूटि गेल अछि

उर-उर मे अछि नव-स्फूर्त्ति आ
नव विश्वास, भावना नूतन
प्राप्त भेल अछि आइ पुनः
हमरा स्वतंत्र तन, मन ओ जीवन

प्राप्त भेल अछि आइ पुनः
हमरा निज विस्मृत पूर्व महत्ता
संस्थापित भय गेल आइ पुनि
अपन देश पर अपने सत्ता

ज्योतिर्मय सुंदर अतीत आ
अछि भविष्य राष्ट्रक चिर उज्ज्वल
भारत भाग्यक उदित भेल अछि
पूर्व क्षितिज मे रवि ऊर्जस्वल

शिवा प्रताप भगत सिंह चढ़ला
बलिवेदी पर जाहि उदय हित
शीशदान कयलनि जकरा हित
वीरप्रसू जननिक सुत अगनित

दयानन्द, गोखले, तिलक
नौरोजी, चितरंजन, धरणीधर
मोतीलाल, लाजपत, विट्ठल
भगतसिंह आदिक जे नरवर

तनिका लोकनिक स्वप्न भेल अछि
आइ सफल भारत स्वतंत्र अछि
जन्मसिद्ध अधिकार सभक
स्वातंत्र्य सिद्ध ई भेल मत्त अछि

किन्तु एहि स्वातंत्र्यक अद्‌भुत
विद्रोही इतिहास एक अछि
संसारक सभ राज्य क्रांतिसँ
स्थान एकर बस खास एक अछि

मोहन चंद करमचंद गाँधी
कयलनि नेता बनि आन्दोलन
गूँजि उठल अवनी अंबर मे
क्रांतिक विप्लवमय आवाहन

चलल लहरि क्रांतिक जागल
ई सुप्त देश तजि निद्रा आलस
वृद्ध आर्य-भूमिक जागल तारुण्य
पुनः प्रज्वलित बनल बस

त्यागि सौख्य परिवार
दौड़िक' ऐल अनेको विप्लवकारी
श्री राजेन्द्र प्रसाद, नेहरू
और राजगोपालाचारी

वल्लभ भाइ पटेल आदि
जे वर्त्तमान छथि देशक नेता
गुरु छलथिन सबहक प्रिय बापू
स्वतंत्रता - संग्राम - विजेता

ऐल अगस्त अंगरेजक हित
'भारत छोड़'क क्रांतिगान कय
महाकाल केर उठल जखन
अट्टहास पुनि रक्तदान लय

हँसि, लय मस्तक हाथ चढ़ल
बलिवेदी पर अगणित बलिदानी
महाकाल केँ तुष्ट करय
निज रक्त देल जननिक अभिमानी

युग-नेता 'बापू' क भेल पुनि
कठिन तपस्या सुसफल अनुपम
विजयी भेल विश्व मे सबसँ
सत्य अहिंसा चक्रक संगम

भेल देश स्वाधीन किंतु भय गेल
कष्टमय देश विभाजन
किंतु न भै सकैछ स्थायी
चिरदिन हेतु भारतक खंडन

एहि प्रकारें भारतमे
नव जनतंत्रक निर्माण भेल अछि
नव विधान नव प्राण बिलहलक
राष्ट्रक नव कल्याण भेल अछि

आउ करी हम-सब निज देशक
सब प्रकारसँ उन्नत कक्षा
अपन-अपन कर्त्तव्य पूर्ण अछि
स्वतंत्रताक करी सब रक्षा

आइ अतीतक गौरवमय स्मृति
दैछ हृदय मे ज्योतिर्मय बल
वर्त्तमान अछि दुख चिंतामय
किंतु भविष्य नियत चिरउज्ज्वल

आउ करी हम भारतीय स्वातंत्र्यक
सब अभिनंदन शत-शत
सब विधि सभ भय जाइ अपन
देशक पुनि चिर अभ्युन्नति मे रत

आइ हमर अछि मस्तक उन्नत

मिथिला मिहिर : 26 अगस्त 1950

तथापि

छी अबैत इंटरभ्यू द' क'
पटनासँ कोशी-प्रोजेक्ट मे
वेलफेयर इंस्पेक्टर-पदहित
आनक वेलफेयर करबाक बहानासँ
बस, अपन वेलफेयरक जोगार क'
अपन खर्च क' अपन टिकटसँ
डब्लू. टी. जइतहुँ नहि किन्नहु
जँ कदाच पकड़ल जइतहुँ तँ
अपनहि सङ बच्चाक माइकेर
वेलफेयर बुड़ि जाइत जहल मे
इंटरभ्यू तँ नीक भेल अछि
भेला प्रभावित एक्सपर्टजी
कोशिश पैरवी क' क' अयलहुँ अछि
फल्लाँ जी केँ चाह पियाक'
'मेटिनी शो' तक देखलहुँ सङ-सङ
कहलनि जे 'फिर खोज करेंगे।'

जाड़ मास
किछु ऊन किनै ले कहने छली
अपना साड़ी ले नहि किछु चिन्ता
(अपना ले नहि छनि सिहन्ता)

फाटल छै तँ रहओ
मुदा
बच्चा केँ होइ छै साँझ-प्रात क' जाड़
एकटा स्वेटर चाही

बनिञो कयलक बंद उधारी
बहुत भेल छै बाँकी
घीसँ नीक डालडा
गरमे गरम खाइ तँ
कहियो हानि ने होइ छै
मुदा सेहो अछि दुर्लभ
'आलवेज फुल माइंड
एंड एम्पटी स्टोमेक'
एहि युगक कार्टून यैह थिक
एहि युगक ई चित्र
पाइ थिक सभक पितामह

दिन भरि तँ नहि
मुदा राति केँ
बहुत उकासी
मासक ध'क भेल
बच्चा केँ होइ छैक जोरसँ
फीस डाक्टरक रहौ
दोकानहुसँ एम.बी. टैबलेट
एखन धरि कीनि ने सकलहुँ
द' ने सकलियै
कहियो-कहियो दम्म फुलै छनि
हुनको तकर दवाइ चाहिअनि

जड़ी-बुटीक युग बीति गेल अछि
विटामिनक नहि किछु जोगार अछि
अपना जूता फाटि गेल अछि
बरसाती बाटाक
करी की ?...
माइक मोतियाबिन्द
ऑपरेशन मङैत अछि
मुदा सभक थिक मूल पाइ
तकरे अभाव
नहि भेल नोकरी
पढ़ब लिखब बेकार
व्यर्थ थिक ज्ञान
जीवनक 'बदहजमी' थिक
इंटरभ्यू सब बेर बेकारे

हम नहि छी भातिज, भागिन, सरबेटा ककरो
जकरा बलसँ
गणतंत्रक युग मे
पबैत अछि लोक नोकरी
मुदा जानि आ बूझि बात सब
मानि निराशा केँ आशा
द' रहलहुँ इंटरभ्यू तथापि

फुजल महेंद्रूसँ जहाज
पहलेजा दिस क'
बीच धार मे सोचि रहल छी
कते' विशाल, अथाह, प्रवाहित गंगा
आ लोकक लघुता अछि ?

दुर्गमता जीवनक
सुगमता मरणक
लेकिन...
जीवित रहबा ले
इंजिन और मशीनक किछु गर्मी पयबाले'
बढ़ि रहलहुँ अछि ओम्हर
जेम्हर एहि मृत्यु तुल्य शीतल
बसातकेर जल-बयारसँ
बचि सकैत छी
यद्यपि किछुए कालक थिक ई मोह
मुदा बढ़ि रहल पयर ओम्हरे तथापि।

वैदेही : जून 1957
(आत्मनेपद)

देवता, दानव, अंतर आ असमंजस

राम थिकाह देवता
आ दानव थिक रावण
देवता आ दानव मे
भेल भयंकर रण
रावण परास्त भेल
मुइल, गेल स्वर्ग
राम-चरित पूर्ण भेल
पूर्ण सात सर्ग
यैह कथा गौरी केँ
सुनौलनि शंकर
पुछलथिन तखन
पार्वती जी सत्वर
देवाधिदेव!
जँ मुइला पर दानवो गेल शुचि स्वर्ग-लोक,
तँ होइछ देवता-दानव मे पुनि की अंतर?

बजलाह शंभु—
'हे देवि,
मृत्युकालहुक अंत क्षण धरि
मन मे जँ सद्विचार, सद्बुद्धि होइक
दानवो देवता भ' जाइछ'
सुनिक' ई
विस्मित होइत पार्वती

भ' उठली तत्क्षण अवाक
भ' गेलनि छगुंता!
असमंजस!!

भादवक सघन गंभीर मेघसन
उठल तखन ई प्रश्न—
'कथंचित जँ जीवन-संध्याक समय
पथ छोड़ि, भटकि, भासि जाथि देव
तँ हुनकर की परिणाम हैत?

रचनाकाल 24-1-1958

कोशीक बाढ़ि

आबि रहलै बाढ़ि; अछि उद्दाम कोशिक धार
आबि रहलै बाढ़ि ई
अति-क्षुब्ध
मर्यादा-रहित सागर सदृश
उछलैत
लहरिक वेग मे
भसिया रहल छै काश वा कि पटेर, झौआ, झार
गाछ, बाँस कतहु
कतहु अछि खाम्ह, खोपड़ि
ख'ढ़ कोरो सहित फूसिक चार
आबि रहलै बाढ़ि; अछि उद्दाम कोशिक धार
बचि सकत नहि एहिसँ
डिहबार बाबाकेर उँचका थान
वा कि गहबर सलहेशक
आ' रामदासक अखरहा
वा डीह राजा साहेबक
ड्योढ़ी, हवेली, अस्तबल, हथिसार
बाभनक घर हो
कि डोम दुसाध गोंढ़िक तुच्छ खोपड़ि
पानि सब केँ क' देतै एकटार
आबि रहलै बाढ़ि, अछि उद्दाम कोशिक धार
ऊँच-ऊँच जतेक अछि
सब नीच बनि जयतैक

नीच अछि खत्ता कि डाबर
भरत सबटा
ऊँच ओ बनि जैत
हैत सबटा एक रंग समभूमि
ऊँच-नीचक भेद नहि किन्हु रहत
जे ऊँच अछि
पहिने कटनिआ मे कटत
आ' नीच सभ केँ
ऊँच होमक
सुलभ भ' जयतै सहज अधिकार
कोंढ़ मे छक् द' लगय तँ की करब
आब ई सब तँ सहय पड़बे करत
बाप-बाप करू कि पीटू सब अपन कप्पार
आबि रहलै बाढ़ि; अछि उद्दाम कोशिक धार
आरि धूर ने काज किछुओ द' सकत
सब बुद्धि
नियमक सुदृढ़ बान्ह ने किच्छु
टिकि सकत किछु काल
बस
सब पर पलाड़ी पानि
उमड़िक' चढ़ि जैत
सब केँ भरि बरोबरि क' देतै
आ पुरनकी पोखरि
कि नवकी अछि जतेक
खसि पड़त ई पानि बाढ़िक हहाक'
नहि रोकि सकबै
रोकि नहि सकतैक ऊँच महार
जे बनल अछि पोखरिक रक्षक
भखरिक'
वा कि कटिक'

निपत्ता भ' जैत
आ पानि जे खसतै
तखन ई
बहुत दिनसँ बान्हि क' राखल
महारक शृंखला मे
अछि जते युग-युग प्रताड़ित
प्रपीड़ित
फुसिऐल
पोसल
नेनि, भुन्ना आ कि ललमुहिञा प्रभृति
ई माछ सब एहि पोखरिक
नहि रहि सकत
सब बहार उजाहि मे जयबे करत
पाग आब रहय कि नहि
वा बचि सकय नहि टीक ककरो
की करब?
एहि बाढ़ि मे अछि ककर वश?
ककरा कहू जे के नै हैत देखार
आबि रहलै बाढ़ि; अछि उद्दाम कोशिक धार
आबि रहलै बाढ़ि जे कोशीक ई
बचि सकत नहि घर आ कि दुआर
सड़क-खत्ता
ऊँच-नीच
पोखरि कि डाबर
गाम-गाछी
आ कि खेत-पथार
आबि रहलै बाढ़ि; अछि उद्दाम कोशिक धार।

रचनाकाल : 4 मार्च 1953
प्रकाशित : अभिव्यंजना 1960
आत्मनेपद

इज्जति कोन पदार्थ ?

बेटिक गहना बन्हकी रखने जँ चलि रहलै काज
धूम-धामसँ श्राद्ध हैत आ गदगद हैत समाज
फल्लाँ बाबू मुइला, कयलनि चिल्लाँ बाबू भोज
आगाँ-पाछाँ जे हो, क्यो की काज करै अछि रोज ?
बापक अरजल खेत राखि सुदभरना करी बिदाइ
गौआँ-घरुआ, सर-कुटुम्ब आ हर्षित होथि जमाइ
की करबैलय, बिका जाय जँ गाछी आ बँसबारि
कन्यादान करब तेहने ठाँ पढ़य न गौआँ गारि
गोलेदारक वा मरवाड़िक बढ़ल जाइछ जँ कर्ज
सरकारी 'लोन' क नोटिश जँ भेटय तँ की हर्ज
मुदा हैत उपनयन ठाठसँ जेहने मुंडन भेल
की न करै' अछि लोक कहू तँ अपना इज्जति लेल ?
नोत-पिहानी पुरी वा पाहुन-परक आबि जँ जाथि
भार-दौर दी वा कोनहुना घरपर दू जन खाथि
इज्जति टा रहि जाय, करब तेहने सब स्वार्थ-परार्थ
मुदा आइ धरि के बुझलक जे इज्जति कोन पदार्थ ?

मिथिला मिहिर : 11 सितंबर 1960
मिथिला दर्शन : अक्तूबर 1960
(आत्मनेपद)

सुधि-सागर मे

बीतल ओ बरिसात नोरसँ तीतल राति-दिवस लय
जीतल ग्रीष्मक तरणि-ताप केँ शरदक सुखद तुहिन-चय
आयल शीतल शरद फुलायल अछि नानाविध फूल
सिंगरहार, तीरा आदिसँ सुललित प्रकृति दुकूल
शान्त, स्निग्ध, सर-सरिता, वन-पथ, चर-चाँचर छविमान
शरत्-पूर्णिमा नैसर्गिक शोभाक क' रहल दान
चूमय लहरि कूल केँ झूमय बेसुध विरही लोक
कुंज-पुंजमे वन-निकुंजमे पसरल अछि आलोक
कलिक अनावृत यौवन पर अछि अलिकुल भेल बेहाल
सरस-समीर सुरभिसँ उन्मद भेल द' रहल ताल
संकेतेँ शिर हिला-हिलाक' फदकय गाछक पात
पवन पसारय नहुँ-नहुँ मनमे प्रणय-रहस्यक बात
सबतरि नभ, वन, जल, थलमे अछि कौमुदीक उत्कर्ष
हमर प्रवासी मनमे सहसा भेल स्मृतिक संस्पर्श
सुधि-सागरमे उठल अहँक शुचि स्नेहक भाव तरंग
क्षण-क्षण अन्तर्मनमे जाग्रत प्राण! अहींक अनंग

मिथिला मिहिर : 23 अक्तूबर 1960
(आत्मनेपद)

सब अहींक थिक

हे रहस्यमयि कलित कल्पने, पाबि अहँक बल
भेल प्रस्फुटित अन्तस्तलमे काव्यक शतदल
कयल असंगत असम्बद्ध शब्दक जे गुम्फन
बनल पाबिक' स्नेह अहँक जे मधुपक गुंजन
छन्द-वर्ण-गतिहीन भेल नि:सृत जे नव-स्वर
अहँक पाबि से स्पर्श बनल पिक-गान मधुर तर
निज समस्त अस्तित्व, प्राण, मन, अपन देह केँ
बिसरि जाइ, नहि बिसरि सकै छी अहँक स्नेह केँ
जे किछु छी से सब अहींक थिक कृपा चिरन्तन
करू कोन विधि देवि! अहँक आभार-प्रदर्शन

मिथिला मिहिर : 18 जनवरी 1961
(आत्मनेपद)

आत्मनेपद

मानह अपना केँ राम भनहि
हमरा नहि किछु आपत्ति
मुदा न हम मारीच
मारिक' तोँ
सीकी केर बाण
उड़ा देबह शत-योजन दूर
हम छी तेज: पुंज
प्रखर मार्त्तण्ड
जँ हमरा आक्रांत करक छहु मोह
तँ संपाती सदृश
पक्षसँ हीन
ठुट्ठ
अपंग
बन' हित रहह वृतोऽस्मि।

मिथिला मिहिर : 4 जून 1961
(आत्मनेपद)

मोन तथापि उड़ैत रहै अछि...

चेतनाक विद्युत संचालित
भावनाक स्विच युक्त
आर म'न अछि हमर
जेना हो कागज कोनो युक्त
इच्छा, लिप्सा आ आशाकेर
पंखा अछि त्रिगुणायत
होइत मात्र स्विच ऑन वेगसँ
चलइछ त्वरित असंयत
उड़' लगै अछि लगले मन ई
पाबि बसातक भेंट
मुदा दाबि चट दैछ विवेकक
मन केँ पेपर वेट
मनपर केन्द्रित दायित्वक
यद्यपि रहइत अछि भार
मोन तथापि उड़ैत रहै अछि
पाबि बसात अपार

मिथिला मिहिर : 30 जुलाइ 1961
(आत्मनेपद)

एक राति : एक गीत

के गबैत अछि दूर नदी लग
बैसि विरह केर गीत
ककर प्राण छै आतुर
बिछुड़ल ककर प्रवासी मीत ?
ई इजोरिया राति, चान अछि
पीयर-करुण-उदास
दिनभरि पछबा बहि, निशीथ मे
थाकल, मौन, हताश
ग्रीष्मक तापहु सँ असह्य अछि
सत्ते विरहक दाह
रोम-रोम सँ घामक व्याजेँ
बहइछ अश्रु-प्रवाह
आँखि मूनि छी पड़ल सेजपर
कछमछ करइछ देह
मोन पड़ल अछि सजनि
अहँक पछिला सब प्रणय-सिनेह
होइछ आइ सब लोक-लाज तजि
हमहूँ गाबी गीत
हमर प्राण अछि आतुर
बिछुड़ल हमर स्नेह-संगीत।

मिथिला दर्शन : सितंबर, 1961
(आत्मनेपद)

विद्यापति-स्मृति-दिवस

आइ निधन तिथि
महाकविक थिक
कवि-कोकिल
कवि-पंचानन
कवि-शेखर
अभिनव जयदेवक थिक
मैथिलीक इतिहासाकाशक
ऊर्जस्वल साहित्य-रविक थिक
आइ निधन-तिथि महाकविक थिक

कार्त्तिक शुक्लक त्रयोदशी ई
विद्यापति-स्मृति-दिवस
समिति मे
गोष्ठी मे
सब ठाँ
परिषद् मे
आइ मनाओल जाइत अछि ई तिथि
धूमधामसँ समारोहसँ
बड़े-बड़े वक्ता ओजस्वी
द' द' निज व्याख्यान बुझाबथि
धन्य छला' ओ
पूज्य छला' ओ

कवि–कोकिल
मैथिली–पुत्र
मिथिलाक गर्व
विद्यापति
जनिकर काव्य–गगन मे
अमर–ज्योति
अछि अनुप्राणित क' रहल कला कें
झूमि–झूमिक'
कवि सब गाबथि
मधुर–कंठसँ
राग–तानसँ

आर
एम्हर अछि मुग्ध भ' रहल
जनता श्रोता
बड़े ध्यानसँ
व्यक्तित्वक उत्कट महत्वसँ
वक्ता लोकनिक ओहि शानसँ
आर
एहि कविताक गानसँ
आर एखन तँ अछिये बाँकी
सभापतिक वक्तव्य
कि जे सुनितहि भ' जायत अंतर मोहित
रंगमंच पर बैसल छथि
श्रद्धेय सभापति
पूज्य, शिष्ट
गंभीर बनल
जे मठोमाठ
अतिशय गरिष्ठ
जनिकर होइत अछि

ओजपूर्ण वक्तव्य
मुदा
आइये धरि सभटा
धोखोसँ नहि सोचि सकै छथि
पुनः दोसरो दिन
ई वक्ता
कवि जी
आ तमसाइ नहि तँ—
पूज्य सभापतिजी सेहो
जे विद्यापति मरि गेला'
मुदा की हमरालोकनिक
कर्त्तव्यक भ' गेल इतिश्री
एक बेर ली मना वर्षमे
विद्यापति-स्मृति-दिवस-मात्र... ?

आ—
झाड़ि-पोछिक'
सड़ल पुरातन काव्य
सिनेमा गीत बना आधार अपन
जे देश भ' रहल
तथाकथित प्रगतिक पथ मे
गर्वोन्नत-शिर
अति शुभ्र-सभ्य कहबैत अग्रसर
पढ़ल-लिखल तँ पढ़ल-लिखल छथि
मूर्ख देहाती छथि निठट्ठ जे
नर-नारी
आबाल-वृद्ध सब
सभक कंठ मे यैह व्याप्त अछि
की थिक यैह विधेय ?

विद्यापति मरि गेला'
मुदा की विद्यापतिक 'जन्म-भू' मे
पुनि आब न क्यो बनि सकत महाकवि?
प्रतिभे की उठि गेल एतयसँ
छथि जे जीवित कलाकार
साहित्यिक
तनिकर की करैत छी?
अस्तु, व्यक्ति तँ व्यक्ति
मुदा निज साहित्यक हित
अपन मातृभाषाक हेतु
जे विद्यापतिक मातृभाषा थिक
की करैत छी?

ई थिक बोली मात्र सत्य की?
आर, बनल छी क्षुब्ध मात्र
बस, मौन रहब
चुपचाप रहब
निज शांत स्वभावक
गांभीर्यक, हो कोना उपेक्षा?

जनगणना मे लिखओ जे लिखय
संविधान मे रहओ जे रहय
एतबाधरि जे लेब अवश्ये
विद्यापति-स्मृति-दिवस
मना हम धूम-धामसँ
एक बेर क' लेब वर्ष मे
पूजन, वंदन
गुण-चर्चा
अर्चन, नीराजन
हम पुनि अगिला साल

धन्य भ' जैत देश
आ मिथिला, मैथिल, मैथिलीक के कहय
धन्य हयताह महाकवि
बस,
एतबेसँ धन्य भ' जेता'
मिथिला देशक आदिपुरुष
ओ महाराज मिथि
आओत जखन पुनि
ई स्मृति-तिथि।

मिथिला मिहिर : 19 नवंबर 1961
(आत्मनेपद)

उपलब्धि

अछि गुलाब मे काँट
गड़त तँ हयत वेदना
मुदा प्रयोजन अछि हमरा
सौंदर्य गंधसँ
रहओ पंकजक जड़ि मे
कर्दम अशुचि असुंदर
शतदल थिक अनमोल
सकल श्री-छविमय सुरप्रिय
चान कालिमा-युक्त
पूर्णिमो मे रहैत अछि
मुदा होइत छै सभ केँ
अनुपम सुख ज्योत्स्नासँ
यद्यपि जीवन असत् अचिर
क्षणजीवी दुखमय
मुदा चिरंतन-सुखक
अन्यतम साधन-शाश्वत

मिथिला मिहिर : 4 मार्च 1962
(आत्मनेपद)

असम्भाव्य

राति अछि नि:शब्द, सिहरल
सजनि, प्राय: दू बजल अछि
सघन-तिमिराच्छन्न-नभ मे
कोन ई तारा सजल अछि?

ठीक एहिना हमर मन मे
अहँक रूपसि, रूप चमकय
बुझि पड़य निज श्वास मे सखि,
अहँक उन्मद श्वास गमकय

आँखि मे अछि निन्न,
मन मे वेदना अछि भरल शत-शत
आर चिंतन मे सुमुखि,
अछि विगत, आगत आ अनागत

जा रहल छी ट्रेन पकड़'
मौन पथपर एखन एकसर
पथक दुनू कात अछि
प्रासाद, खोपड़ि आर घर कत

ई अपरिचित गाम,
परिचयहीन अछि गंतव्य आ पथ
जा रहल छी, उठि रहल अछि
विवश पद-युग अलस आ श्लथ

चिर-प्रवासी विरह-कृश सखि,
हमर भावुक करुण अंतर
एम्हर अछि ठेहिआयल थाकल पयर
ओमहर घर मनोहर

पूस मासक राति कन-कन
सर्द पछबा बहि रहल अछि
जाड़सँ थर-थर कँपैत
अधीर अंतर कहि रहल अछि

एतहि कोनो कोठली मे
जँ अहाँ रहितहुँ एहि क्षण
द्वार खोलि बजा लितहुँ
आ अटकबाक दितहुँ निमंत्रण

आइधरि जतबा बितल अछि
तीत कुंठाग्रस्त जीवन
होइत सहसा सखि, समस्त
अनंत-मधुमय हमर क्षण-क्षण।

मिथिला मिहिर : 14 जनवरी 1962
(आत्मनेपद)

हे अपरिचिते

हे अपरिचिते,
नहि जनैत छी अहाँक नाम की थीक
(कत' रहै छी, की करैत छी)
शोभा बढ़ा रहल छी सरिपहुँ
अहाँ कोन वीथीक?

मुदा होइत अछि रवि छोड़िक'
प्रतिदिन भेंट अहाँसँ
सड़कक ओहिकात
पहुँचै छी
कहि नहि कतय कहाँसँ
एतबाधरि जे काज करै' छी
अहूँ कतहु औफिस मे
हमरे जकाँ वयस अछि भरिसक
बीसम वा बाइसमे
अहूँ जाइ छी बस पर चढ़िक'
मुदा दिशा अछि भिन्न
घुमती काल रहै छी
हमरे जकाँ झमारल खिन्न
अहुँक आँखि मे भरल रहै' अछि
कोनो करुण पियास
हमरे जकाँ रहै' छी भरिसक
सदिखन अहूँ उदास

देखि अहाँ केँ बुझि पड़ैछ जे
हम लगैत छी नीक
प्रतिदिन भेंट होइ ले'
लागल अहुँक रहै' अछि हीक
अहाँ करै' छी स्नेह
हमर अछि ई अटूट विश्वास
तेँ छी चुप जे बनल रहय
हमरा विश्वासक आस

'हम आ अहाँ
... ...एक छी'
मन ई मानि नेने अछि बात
टूटय नहि विश्वास हमर ई
तेँ छी चुप एहि कात
आजीवन बिनु बजनहि
राखब ई विश्वास अभंग
खेपि लेब जीवन हम संगिनि,
अहँक सिनेहक संग

हे अपरिचिते
भेल आइधरि
हमर अहँक नहि परिचय
मुदा विश्व मे सभसँ बेसी
परिचित अहीं असंशय।

मिथिला मिहिर : 25 मार्च 1962

अन्तिमेत्थम्

वर्त्तमान केँ देखि भयाकुल
आ भविष्य केँ चिन्ता-संकुल
उठल कविक सहसा सशक्त स्वर
देखू एमहर
भस्मासुर बनि
निर्माता केँ भस्मीभूत करक हित सत्वर
दौड़ल आबि रहल अछि
मनुजक अनुचर ई विज्ञान
जन-जन केँ आतंक-ग्रस्त क'
मन-मन केँ संतप्त त्रस्त क'
बना रहल भूतल केँ अनुक्षण
नष्ट-भ्रष्ट-वीरान

थर-थर, थर-थर काँपि रहल अछि
नाशक आश केँ विषण्ण बनि
भयाक्रांत भूलोक
देखिक' शक्तिक ताण्डव-नृत्य
अधुनातन प्रगतिक फल अणुबम
उद्जन, स्पुतनिक, राकेटक क्रम
मालिक मानव आइ बनल
सेवक विज्ञानक भृत्य
अस्त्र-शस्त्र केँ पिजा रहल अछि
छोट-पैघ सब देश तरेतर

शांतिक आडंबर रचने अछि
छद्म-रूपसँ ऊपर-ऊपर
वर्त्तमान कलुषित
भविष्यपर पसरल अछि आतंक
रेडियोक सक्रिय-कण-दूषित
विश्वक कण-कण
सकल चराचर
जल, थल, अनिल, गगन, पशु, पक्षी
मूर्ख, सुधी, अनभिज्ञ, विज्ञ सब
की राजा की रंक
वैज्ञानिक उपलब्धिक बलसँ
सुरसा सन बृहदाकृत मुँह ल'
संसारक गति आइ क' रहल
निर्माणक गति-रोध
अस्तित्वक आस्था, निष्ठा
आ विश्वासक जड़ि काटि हृदयसँ
सहज ज्ञानसँ आइ लैछ
विज्ञान कुटिल प्रतिशोध

मुदा एहन प्रगतिक पथ रोकू
प्रलयक सहस्राश्व-रथ रोकू
करू तेहन आयास
जाहिसँ पशुता हो अवरुद्ध
प्रीति, स्नेह, करुणा, ममतासँ
दया, क्षमा, मैत्री, समतासँ
मानवता हो विजयी
नहि हो पुनि संभावित युद्ध।

मिथिला मिहिर : 27 मइ 1962

एक पत्र; एक एप्रोच

प्रियतमे,
नहि, नहि
डार्लिंग?
पहुँचत ई पत्र
हाउ डू यू डू?
अहीं सन हू बहू
बौआइत अछि हमरो मन
अनेरे अन्यत्र

प्रथम किरण सिनेहक
जेना जंगल मे भटकि गेल
ई अपूर्ण उपाख्यान
अप्रत्याशित बिन्दुसँ आरम्भ भ'
कहि नहि कोन रूपसीक
कटाक्ष मे अटकि गेल
आ उदास अनुभूतिक
वेदनाक अभिव्यक्तिक
सम्बन्धे सहसा हमरासँ टूटि गेल
हमरे छल मन
आ हमरे छल भावना
मुदा आइ कहि नहि कत' ओ छूटि गेल

ई दोसर बात जे
विरहक किछु धाह अछि
एप्रोचक 'डिश' मे
एटेचमेंटक 'कप'
आ ठंढा सन भेल
अहँक ब्यूटीक चाह अछि

मुदा तैयो अहाँसँ दूर भ' गेला पर
हमरा मरीज मन मे अछि
कने हल्लुक सन दर्द
कने-मने कम्पन
आ दाबल सन छींक
अहींक कुमारि स्मृति मे
जेना अस्फुट संगीत
उखरल सन, पुखरल सन
मने कोनो न'व कविता ई थिक।

मिथिला मिहिर : 17 जून 1962
(आत्मनेपद)

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ केँ श्रद्धांजलि

स्वीकृत हो श्रद्धांजलि शत-शत
हे बंगालक
भारत-भूमिक
एशियाक
नहि,
सीमासँ निर्बन्ध
निखिल विश्वक प्रिय मानव
मानवता केर गौरव-मस्तक

हे कवीन्द्र
गुरु विश्व समस्तक
पाबि अतुल अवदान चिरन्तन
पुलकित अछि सरिपहुँ जन-गण-मन
विश्व पाबि अद्‌भुत गीतांजलि
विनत द' रहल सब श्रद्धांजलि
एक-एक रचना पर अर्पित
राष्ट्रक जन-मन अछि श्रद्धानत
स्वीकृत हो श्रद्धांजलि शत-शत

हे गुरुदेव, रवीन्द्र तपोधन
भारत-भूमिक महारत्न-धन
आध्यात्मिक आलोक द' रहल
सकल विश्व केँ शांति-निकेतन

हे महाकवे,
देशभक्त हे,
हे चिन्तक,
हे गीतकार,
ऋषि
हे युगस्रष्टा,
हे रचनारत
अर्पित अछि भावक ई अक्षत
श्रद्धा-सुमन, स्नेहार्घ्य, सुसंगत
श्रद्धाविगलित भावराजि कतय
स्वीकृत हो श्रद्धांजलि शत-शत।

रचनाकाल : रवीन्द्र जयन्ती 1962

एक साँझ : एक अनुभूति

बाजि उठल अछि भोंपू लगले घाट जहाजक
पसरय लागल चौदिस साँझक हर्ष
जेना रूपसी प्रेयसीक स्मृतिसँ होइत अछि
मन अनुरंजित
तन रोमांचित
क्षण प्रणयाकुल
तहिना संध्या-सुंदरीक आगमनसँ अछि
चमकि रहल प्रिय-काल पुरुषकेर
व्योम-आँगनक फर्श
देखि रहल छी, सूनि रहल छी
हमहूँ खिड़की खोलि
ट्राम, बस, रिक्शा आदिक हूलि
असहिष्णु घंटी साइकिल केर
आ पयरे भागल जाइत उद्ग्रीव मनुक्खक
असली व्याकुलता अगबे
से छूबि रहल अछि हमरा मन केँ
सभक व्यक्त संघर्ष

सोझाँ अछि चार, छत आ जे मुड़ेर
तहिपर फेकल, पसरल, टांगल सन
छल सुखाइत जे वस्त्र
रंग-विरंगक
साड़ी, साया, ब्लाउज, पैंट, धोती, पैजामा, सर्ट

(सभ छल नाप-नियार
रूप, रंग, मन, वर्ण आ वयस
तथा सभसँ बढ़ि
अर्थस्तरक वास्तविक परिचायक?)
से उतरि-पुतरि क' यथास्थान भ' गेल
यथा कोनो खुरलुच्ची छौंड़ा
भागि पड़ाइछ एमहर-ओमहर
अपन अस्तित्वक दृढ़ परिचय सब केँ देबा लेल
पसर' लागत क्रमश: तहिना
भिन्न-भिन्न घरसँ बहराक'
धुआँ उज्जर कारी ई अनमेल

दिनभरि विरह खेपि कोनहुना
उद्वेलित मन नव-परिणीता
अपन प्रियक क' रहलि प्रतीक्षा व्यस्त
भेल दुखद दिन अस्त
झाड़ि बहारि अपन घर-आँगन
वासकसज्जा चंचल उन्मन
हाथक चूड़ी व्यक्त क' रहल
नहुँ-नहुँ हृदय-अधीरक मधु-स्वन

मुदा प्रवासी हमरा ताहिसँ कोन प्रयोजन?
हम तँ अपन विरह-पीड़ा केँ
फुसिअयबाकेर भ्रम मे सरिपहुँ
दोहरबैत रहलहुँ अछि ओकरे एहिना सौंसे वर्ष
पसर' लागल चौदिस साँझक हर्ष।

मिथिला मिहिर : 23 दिसंबर 1962
(आत्मनेपद)

जागरण-गीत

जाग, जाग, जाग रे
गूँजि रहल अंतर मे, अवनी मे, अंबर मे
गिरि-कानन-गह्वर मे, अब्धि-सरित-निर्झर मे
जन-जन मे, मन-मन मे, यैह एक राग रे,
जाग, जाग, जाग रे

भेल सजग सब प्रबुद्ध, एक हृदय बनल शुद्ध
शत्रुक संहार लक्ष्य बना अपन अनवरुद्ध
सजग राम, सजग कृष्ण, सजग शिवा, सजग बुद्ध
चाहि रहल भूत आ भविष्य, वर्त्तमान, युद्ध
सभक हृदय दीपित अछि देशक अनुराग रे,
जाग, जाग, जाग रे

स्वातन्त्र्यक मणि-रक्षाहेतु सजग भ' सत्वर
प्रतिपक्षी विध्वंसक कालकूट ल' तत्पर
देशक अशेष युवक बनल क्रुद्ध नाग रे,
जाग, जाग, जाग रे

गर्वदीप्त अतिप्रचंड, फड़कि रहल बाहु-दण्ड
दुर्जन केँ कठिन दण्ड, तोड़य शत्रुक घमण्ड
भारत-सुत करय सतत अरि-दल केँ खंड-खंड
बचब' राष्ट्रक अविजित सम्मानक पाग रे,
जाग, जाग, जाग रे

गूँजि उठल अछि महान आइ यैह दीप्त गान
राष्ट्रे थिक तन, मन, धन, राष्ट्रे सर्वस्व प्रान
लागय ने राष्ट्रक इतिहास मध्य दाग रे
जाग, जाग जाग रे

रचनाकाल : 30 दिसंबर 62
मिथिला मिहिर : 27 जनवरी 1963

नववर्षक चारि प्रतिक्रिया

एक

चौक परक कैफे मे अपना सहवर्गीक संग
चाह पिबैत काल बजलाह मिस्टर डी. सूजा
समय मुर्गीक संग आबि रहल चुन-चुन करैत
नबका सालक जानवर नहि जनवरीक चूजा
'टा-टा' फ्रेंड ओल्ड इयर
वेल्कम नाउ सेल्फ कमर
न्यू इयर ?

दू

लाइटरसँ सुनगाक' शिमला सिकरेट
भोरे-भोरे लैत अपन नववर्षक वेट
बजलाह म्युनिसिपैलिटीक हेल्थ इन्चार्ज डॉक्टर
लास्ट इयर कंट्रीक जेनरल एलेक्सन
बना देने छल मोस्ट डर्टी; अनहाइजनिक एयर
जाइत-जाइत चीनीक भ' गेल आक्रमण
आ पुनि सहसा भेल सीज फायर
तेँ पुरनका साल छल डर्टी; अनहाइजनिक
आ नवका साल होयत गुड, बेस्ट, वंडर
उतरि गेल मार्केट मे हस्तार्कक खंजन जकाँ
रंग-विरंग मेडिसिनक विज्ञापन कैलेंडर।

तीन

शास्त्रीजी बजलाह बिहुँसिक'
आयल नवका सालक पहिलुक भोर
काल-गगन मे उड़ि रहल जे नियतिक गुड्डी
जोड़ि रहल संसार ताहि मे
जीवन-तागक पुनि ई नवका छोर।

चारि

नव वर्षक स्वागत मे
अस्तित्ववादी निष्ठावान
सत्यकाम, सुन्दरैषी, शिवसाधक साहित्यकार
संकीर्ण-स्वार्थ-सागरक दुस्तर संतरण क' निर्विकार
नव-वर्षक सूर्य केँ
प्रगतिक उद्घोषित शुभ नव-मंगल तूर्य केँ
स्वस्तिवाचनक क्रम मे
भाव-सुमन छिटैत बजलाह
स्वागत हो नव वर्ष
मानवता आलोक करय अवसान तम:संघर्ष
भरय विश्व-जीवन मे निर्मल
सुख-शांतिक शुभ हर्ष।

रचनाकाल : 1 जनवरी 63
मिथिला मिहिर : 26 जनवरी 1963

उद्घोष

आइ स्वदेशक बच्चा-बच्चा कयलक युद्ध प्रयाण
शत्रुक मस्तक चाहि रहल अछि युवकक क्रुद्ध कृपाण
जागल अछि गाण्डीव अर्जुनक जागल रामक वाण
भीमक गदा सजग भ' माँगय आइ विपक्षिक प्राण
गरजि उठल अछि सजग हिमालय, गरजि उठल लद्दाख
गरजि उठल नेफा रे चीनी, कनियें धैरज राख
लगले सरिपहुँ फुजतौ तोहर मदसँ मातल आँखि
चीनी चुट्टी! जनमि गेलौ अछि मरबा कालक पाँखि
साम्यवादकेर खाल ओढ़िक' करय अपन विस्तार
फुसिए इनकिलाब कहि शान्तिक कयलें तों संहार
सुतल सिंह कें क' अपमानित बढलें नीच शृगाल
मुदा जागि ई सिंह, क्रुद्ध भ' बनलौ तोहर काल
आब ने रहतौ सरिपहुँ तोहर कनियों काल घमण्ड
चीनी तोहर सभ मनसूबा होयतौ खंड-पखंड
सावधान चीनी मुमूर्षु! रहलौ सीमा ललकारि
बड़ा प्रबल छै भारत देशक सन्तानक तरुआरि

रचनाकाल : 20 जनवरी 1963
मिथिला मिहिर : 17 मार्च 1963

वसन्त-गान

सरिपहुँ अलि, आबि गेल, भरिसक वसन्त
बाजि उठल गाछी मे कोकिल ई बात
देलक सन्देश यैह गन्धवह बसात
बिहुँसि उठल विटप, बेलि, किंशुक, पलास
आम, जामु या बबूर भ' उठल सहास
सिहरि उठल रोम-रोम पाबि मधुर स्पर्श
जन-मन मे गूँजि उठल मधुपक नव-हर्ष
अनाहूत प्रणय-प्रयास जागल अनंत
सरिपहुँ अलि, आबि गेल भरिसक वसन्त

मिथिला मिहिर : 10 मार्च 1963

दू टा नव कविता

एक : रोजनामचा

ई एकटा चिरइ
जे कत' कहाँदन सँ ख'ढ़-पात आनिक'
हमरा चारक कोड़ो मे
कोड़ोक दोग मे तन्मय भ' खोंता लगबैत अछि
कतेक आश्वस्त अछि!
मुदा हमर भुल्ली बिलाड़ि
ओकरा दिस एकटा आदिम आकांक्षा आ लिप्सासँ
अतिरिक्त अतृप्तिक नजरिसँ देखि रहलैक अछि
आ हमर गृहस्वामिनी
मेघौन समय देखि
बिहाड़िक आशंकासँ आतंकित जकाँ
अपन नेना केँ दौड़िक' कोर मे नुका लैत अछि
आ चुल्हा लग जाक'
बड़े मनोयोगसँ बगेड़ी केँ
नोन-हरदि मिलाक' तरय लगैत अछि
हम अपना कोठली मे बैसल
शोणित पिबैत डाँस केँ
अपना दहिना हाथें छाबा पर ओरियाक'
एकटा कड़गर थापड़ लगबैत छी
तेना क' जे ठामहि ओ पिस्ता भ' जाइत अछि
सौंसे हाथ अपने शोणितसँ
लाले-लाल भ' जाइत अछि
होइत अछि जे सरबे केँ खूब छका देलियनि अछि।

दू : रीतिकालीन आ प्रीतिकालीन प्रेम

ई कँचका कोइला
(एहि कसबानुमा शहर मे कोइलेसँ भानस होइछ)
कारी तँ ओहने अछि
ओहूसँ किछु बेसी
चिक्कन-चमचम तँ सहजहिं बेसी अछि
भारी अछि, सस्तो अछि
भेटितो छैक बेसीकाल, सेहो सुलभतासँ
मुदा एकर धुआँ
सौंसे मोहल्ला मे पसरि जाइत छैक
एकर उत्कट धुआँइन गंध
एकर धुंध, एकर औनाहटि
मोहल्ला भरि मे भरि जाइत छैक
(से खाहे होटल हो, रेस्तराँ हो, केबिन हो)
सब क्यो औना जाइत अछि
साकांक्ष भ' ओम्हरे सब ताकय लगैत अछि
(ओना आब लोक अभ्यस्त भेल जाइत अछि)
मुदा पकलाहा कोइलाक धुआँ
अपनहि आँगन धरि रहैत अछि
कटाह सेहो नहि होइत छैक
सीमे धरि धुआँइत अछि
ओकर 'ताव' सेहो बेसी होइत छैक
दीर्घकालीन, स्थायी आ तेज
तेँ लोक ओकरे बेसी खोज करैत अछि
काँच उमेर आ परिपक्व वयस मे
अंतर स्वाभाविक अछि।

मिथिला मिहिर : 12 मार्च 1963

स्मृति

दूर अंधकार मे
अमाक सघन-कुंतल बीच
धमकल इजोरिया
कि अनचोके मे सहसा
क्षितिज भेल सराबोर
चमकि उठल चान
स्नेह-सरस मुरलिकाक
गूँजि उठल गान
हुलसि उठल अनायास
हमर मन:प्राण

पहाड़क सुनसान, स्तब्ध, उदास घाटी मे
दिशाहीन, पथ-विहीन
विपिनक परिपाटी मे
रुन-झुन, रुन-झुनक बाजि उठल सुर
लग मे अबैत ककरो नुपूर सुमधुर

आ हम विचारय लगलहुँ
एहि तरहेँ
असमय ई
मन मे के आबि रहल
अस्त-व्यस्त हृदयक एहि खंडहरक केबाड़ केँ
मुस्कुराइत

नुकाक'
चुपचाप
नहुँ-नहुँ
यत्नसँ खोलिक'
हुलकी के दैत अछि...?

भरिसक ई अहींक
दुखप्रद स्मृति थिक
कारण जे ओकरा छोड़ि
एना क्यो न आन
एतय एते' राति मे
आबि सकत प्रान?

रचनाकाल : 15 जून 1963
मिथिला मिहिर : 21 जुलाइ 1963

हमसभ श्रम भरिपूर करी

शिलाखंड सँ अवरोधक
अज्ञान हमर मति केर
दृढ़ पौरुषसँ एहि समस्त
बाधा केँ हम चूर करी
हमसभ श्रम भरिपूर करी।

एक-एक योजना हमर
प्रगतिमीलक पाथर
नव स्वप्न केर नव उमंग केर
नव प्रकाश केर घर
राष्ट्रोन्नतिक लेल हृदय सँ
एकरा पूर्ण जरूर करी
हमसभ श्रम भरिपूर करी।

उमड़ि रहल मेघ-छन्द

भरल-भरल नभ आँगन
उमड़ि रहल मेघ-छन्द
हमर हृदय कुहुर बीच
बरसि रहल रस-अमन्द

जागि उठल सखि, सहसा
अहँक अमित सुधि-सिनेह
नव-कदंब सदृश भेल
रोमांचित हमर देह

जवाकुसुम जकाँ आइ
लज्जाकुल लाल-लाल
मोन पड़ल मधुर अधर
चिकुरांकित स्निग्ध गाल

मोन-भ्रमर अटकि गेल
रूप-कमल-संपुट मे
चेतनाक पथिक विकल
भटकि गेल झुरमुट मे

निन्न बहकि-बहकि गेल
अहँक सुधिक कानन मे
निमिष खसब बिसरि गेल
मुग्ध अहँक आनन मे

शांति मनक हेरा गेल
सजनि, सघन कुंतल मे
ओझरायल मोन हमर
अहँक तरल-अंचल मे

स्वप्न-विहग कूजि रहल
प्रणय-तरुक पुंज-पुंज
गीत हमर गूँजि रहल
सुधिक सघन कुंज-कुंज।

रचनाकाल : 12 अगस्त 1963
मिथिला मिहिर : 1 सितंबर 1963

चौरचनक चान

दधि-शंख-तुषाराभ
अत्युज्वल अमिताभ
नभ मे जे कने काल
चमकि गेल चान
से थिक अदर्शनीय
वर्जित आ कलंकित
मुदा सभक ऊपर अछि
शंभु-मुकुट-भूषण भ'
क्षीरोदार्णव-संभव
अभिवादनक स्तूप
से थिक हमरे व्यक्तित्वक प्रतिरूप
जे एहि क्लीव-युगक
असंबद्ध पौरुषक
सब दिन आखेट बनल
अद्‌भुत अनूप ?
मुदा आइ ओकरे सब
क' रहलै गुणवंदन
स्मृति-पर्वक निष्ठा लेल
अपन प्रतिष्ठा लेल
अभ्यर्थना अभिनंदन।

वैदेही : अगस्त 1963

आह्वान

आह्वान आह्वान
अपन मातृभूमिक
अपन स्वाधीनताक हेतु
आइ के क' रहल
देशवासीक आह्वान?
गूँजि रहल सबतरि अछि
'तस्मात् युद्धस्व भारत'क
चिर-निर्भय गान!

संग्रामक मोरचा पर
अहँक शौर्य, अहँक वीर्य
देशभक्ति पूर्ण अहँक
बलिपंथिक धर्म
उत्पादन मोरचा पर
अहँक श्रम, अहँक क्रम
देशप्रेम पूर्ण अहँक
बंधु, सकल कर्म

देशमाताक करत मस्तक केँ गर्वोन्नत
आ अपन स्वाधीनता केँ
बना देत चिर-शाश्वत
अत: करू सभ क्यो मिलि
एहि महालक्ष्य लेल

कृतनिश्चय, सावधान
अचिर, महाभियान
'उतिष्ठत, जाग्रत
प्राप्य वरान्निबोधत'

यैह सभक महामंत्र
यैह एक गान
घर-घर मे संगर मे
आइ-माइ क' रहलि
सपूतक आह्वान।

रचनाकाल : 22 सितंबर 1963
मिथिला मिहिर : 6 अक्तूबर 1963

जीवनक ई क्षण

जीवनक आरम्भसँ ल'
एते दिनुक बाद
आइये हम पहिले-पहिल
एक क्षणक हेतु
पऔलहुँ अछि अपना अस्तित्वक प्रसाद
जे अछि अगबे
असंयुक्त
असंदिग्ध
अननुभूत पूर्व
आ अक्षुण्ण आस्वाद
अस्तित्वक प्रसाद!

अंतर आ बाह्य भेल सब एकाकार
आइ हम ने कयलहुँ अछि अपन तिरस्कार
एहि क्षणक जीवन लै
ककरो ने मानय पड़ल अछि आभार
ई हमर अप्पन थिक
एक मात्र अप्पन
एहि क्षणक जीवन
आ
जीवनक ई क्षण
जाहि मे आत्मोपलब्धिक भेटल आह्लाद
एते दिनुक बाद।

रचनाकाल : 23 नवंबर 1963
वैदेही : मइ 1964

ओहि सपूतक करय आरती

बाजि उठइ अछि जखन स्वदेशक
स्वातंत्र्यक रक्षार्थ देश मे
आह्वानक रणभेरी
तकर सचेतक मर्मस्पर्शी
ध्वनि केँ सुनिते देरी
फड़कि उठइ अछि सजग सपूतक
युद्धाकुल तरुआरि
सीमान्तक प्रहरी बनि देशक
गर्वदीप्त
बलि लेल उताहुल
शत्रुक दर्प चूर्ण करबालय
आयुध लैछ सम्हारि
ओकरे वीर-विदा-बेला मे
करबालय मधु-मंगल-टीका
ऊषा प्रतिदिन अबैछ ल' क'
कुंकुम भरल चँगेरी
ओहि सपूतक करय आरती
दिनकर अप्पन ज्योति-पुंज ल'
दै अछि प्रतिदिन फेरी।

रचनाकाल : 23 नवंबर 1963
मिथिला मिहिर : 1 दिसंबर 1963

पहिल शर्त्त

सबतरि प्रतिरक्षाक यदपि छी
सूनि रहल तैयारी
जागि न रहल देशवासी मे
तदपि पूर्ण भैयारी
गरजि-गरजि जे विविध मंचसँ
बाजथि नेता उद्‌भट
तनिको मुँहसँ छी सुनैत
बनले अछि राष्ट्रक संकट।

मुदा तकर हम करब सामना
की केवल भाषणसँ?
आनक कृपेँ परिछि आनब की
विजयश्री केँ रणसँ?
हमरा भय अछि बंधु, एखनधरि
तंद्रा नहि टूटल अछि
अपन क्लीव-आदर्शक भ्रामक
मोहो नहि छूटल अछि
सस्त सुयश केँ छोड़ि
राष्ट्र-मानस जँ होय पवित्र
जागि उठय जीवनक देवता
जागय राष्ट्र-चरित्र
हम अतीतसँ लेब
शूरधर्मक नहि जँ पुनि दीक्षा

नैतिकता–सीताक लेब नहि
जँ हम अग्नि–परीक्षा
केवल सैनिक शक्ति बढ़ाक'
रोकब की विस्फोट?
हथियारक भण्डार मात्र की
रोकत शत्रुक चोट?

ओकरा पाछाँ कर्त्तव्यक जँ
धधकल प्रखर अनल हो
विजयी होइछ देश तखन
जँ जीवित नैतिक बल हो।

अपन कर्णधारक
चारित्रिक दृढ़ता आ ईमान
जन सामान्यक सुसंगठित
निष्ठा, जागृत अभिमान
देशक विजय निमित्त
पहिल ई शर्त्त, पहिल थिक साधन
बलिक हेतु हो आतुर आकुल
राष्ट्रक निश्छल जन–मन।

रचनाकाल : 24 नवंबर 1963
मिथिला मिहिर : 26 जनवरी 1964

पैघ लोक

(एक आधुनिक शब्द चित्र)

नाम बड़े ख्यात छनि
पैघ-पैघ बात छनि
गुण छनि तीन तँ
दोष पाँच-सात छनि

दृष्टि बहुत बंक छनि
मोन निश्शंक छनि
कयने भयभीत रहत
तेहने आतंक छनि
जेहो क्यो तंग छनि
सेहो संग-संग छनि
क्षणे रूष्ट, क्षणे तुष्ट
गिरगिट सन रंग छनि
बाते अड़ाँच छनि
खूब पेंच-पाँच छनि
थाहे ने लागत जे
झूठ आ कि साँच छनि

बेरमे, बेगर्त्ता मे
करताह सभक पुछारि
मुदा ई सधा लेताह
सात पुरुष धरि कनाड़ि
मेघ छथि, बिजली छथि
अन्हड़, पाथर, बिहाड़ि
भिड़थिन जँ हिनकासँ
देथिन जड़िसँ उखाड़ि
सर्वथा अथाह छथि
बड़ पिछराह छथि
बूझि के सकैछ जे
रौद आ कि छाह छथि

बात सभमे 'वेट' छनि जातिवादक रीडर छथि
एक्शन सभ 'सेट' छनि समाजवादक प्लीडर छथि
बहत्तरि हाथक अँतड़ी डिमोक्रेसीक लीडर छथि
ओझरायल भरि पेट छनि बड़का प्रोजेक्ट छनि

जीवन मे राजनीति
अगबे सब्जेक्ट छनि
गुट्टवाद, गोटीवाद
एम एंड आब्जेक्ट छनि
मिसरीक बोल छनि बूझय मे निस्सन छथि
यश सौंसे घोल छनि बिनु बूझल फोंक छथि
बाहरसँ शुभ्र-शाभ्र खोल छनि मनुक्खक
भीतरसँ झोल छनि आ प्रच्छन्न जोंक छथि

अकस्मात हर्ष छथि
साक्षात शोक छथि
टैक्टफुल, प्रैक्टिकल
ई पैघ लोक छथि।

रचनाकाल : 26 नवंबर 1963
मिथिला मिहिर : 5 जुलाइ 1964

आबि गेल छथि पाहुन नवल वसंत

फूलल सरिसव विहगक कलरव
किसलय नव-नव मुग्ध मनोभव
सहसा देल जगाय हृदय मे अननुभूत सन कंपन
आइ बनल तैं माटिक कण-कण कंचन
अभिनव छविसँ स्निग्ध बनल अछि
वन-उपवन घर-आङन

वातायनसँ घर आबि हठात
परम दुलारू कनियाँ सन ई चंचल मलय-बसात
छिड़िया गेल क्षणहि मे सौरभ
आमक मंजर गंधें संकुल
सुमन-सुमनपर अलिगण आकुल
रोमांचित तन मदनें व्याकुल
खन उन्मन खन मगन-मगन मन
प्रकृति-प्रियाक देखि आलिंगन
नयन-नयन मे उमड़ल अछि
यौवन-रस-धार अनंत।
आबि गेल छथि पाहुन नवल-वसंत

मातल मधुकर उन्मद पिक-स्वर
लता-विटप-किसलय मधु-निर्झर
भरय निसर्गक कण-कण प्रतिक्षण

सजनि अपरिचित भावक मर्मर
मन:प्राण मे अनुगुंजित सखि
कोन सिनेहक कंत?
आबि गेल छथि पाहुन नवल-वसंत।

रचनाकाल : 8 फरवरी 1964
मिथिला मिहिर : 15 मार्च 1964

श्रद्धांजलि

चलि गेल आइ युगस्रष्टा, युगनेता जगसँ
सुति रहल महानिद्रा मे जन-चेतना प्रखर
भारत माताक सपूत, दूत शांतिक, विश्वक
विश्वस्तम्भ टूटि गेल जवाहर लाल अमर
अछि कानि रहल वसुधा, अंबर, दशदिक्, खगोल
अछि व्याकुल देश-विदेश आ कि इतिहास विकल
के आहत मानवताक करत पुनि दुखमोचन
पीड़ित जग केँ के देत आब शुचि शान्तिक बल ?
ओ अग्निपुंज, आलोक केन्द्र, संकल्प शक्ति
के छीनि लेलक अछि निर्मम, सहसा दुर्निवार
भ' गेल तिरोहित विश्वक आँगनसँ सरिपहुँ
शान्तिक ज्योतिर्मय दीप, छोड़िक' अंधकार
ओ गणतंत्रक अध्वर्यु विश्वशान्तिक गायक
ओ मानवताक स्वरूप भारतक कर्णधार
गाँधीवादक भास्वर तेजोमय शुभ प्रतीक
ओ जन-गण-मन सम्राट, महामानव, उदार
छल जकर शब्द मे उत्थानक विश्वास प्रबल
जे सुनितहि देशक सुप्त मनोबल उठय जागि
छल जकर शब्द मे निर्माणक उल्लास सजग
तेँ धधकि उठइ छल जन-मन मे प्रेरणा आगि
जँ भारतवासी शपथ लैथि ओही अग्निक
ओही पथपर चलबाक करय सुदृढ़ निश्चय
तँ सबसँ बढ़ि श्रद्धांजलि सरिपहुँ सएह हएत
भ' सकत विश्व-मानवता तखनहि अजय-अभय।

रचनाकाल : 7 जून 1964
वैदेही : जून 1964

सत्यान्वेषी

प्रेरणा

मनुज
ओ आदि मनुज
जे छल दुर्जेय प्रकृति सँ भय-संत्रस्त
विवश
निरुपाय
दास
सदिखन मरणक अतिक्षुद्र-ग्रास
जीवनक ने छल जकरा क्षण भरि
अणुमात्र आश
से तोड़ि असत्यक कठिन पाश
सत्यान्वेषण मे बढ़ल
कि ई की मरण और जीवनक रोध?
हिम-प्रलय पयोधि-प्रलय
कि कखनहुँ प्रकृति-क्रोध
भ' जैत कखन आ कोना मरण
नहि होइछ बोध
की हैत न जीवन-मरण बीच शृंखला-शोध?
आओर
ऊर्जस्वल रवि-सम बढ़ल
ओहि मनुजक गति केँ
नहि रोकि सकल नियतिक कोनो बंधन-विरोध

अभियान

ओ बढ़ल सत्यदिश मनुज भूयसी ज्योति-युक्त
सृष्टिक निगूढ़ भेदोद्घाटन हित मरण-मुक्त
ऊपर अनेक नक्षत्र और ग्रहयुत अंबर
नीचा अवनी, गिरि, अब्धि, गहन, सरिता, निर्झर
देखल प्रलयंकर जलधि तथा हिमवृष्टि व्यस्त
जाज्वल्यमान ग्रह-पात, तड़ित, नहि भेल त्रस्त
ई की?
ई सब की थीक?
उठल चिंतन स्वतंत्र
सत्यान्वेषी मनुजक अनेकधा
उठल छंद, स्वर, आर्ष मंत्र
बहरायल ऋचा आ यजुष्, साम भ' ज्ञान-चक्र
उत्पन्न भेल यम, वरुण, विष्णु, पर्यन्य, शक्र
मानव पहिने
उपरांत आएल जग मे ईश्वर
एवंविध सत्यान्वेषी बढ़ल प्रगति पथपर

विजय

अछि भेल आइ युग-स्रष्टा मनुजक चिर-अनुचर
ई महाभूत जल, अग्नि, पवन, क्षिति, नभ अनंत
कोटाणुकोटि जीवनधारी
चर, अचर, निखिल
अति सूक्ष्म-पृथुल, अणु-महत्, वृहत-लघु
दिग्-दिगन्त
अछि आइ मनुज मे केंद्रित ई आसिन्धु क्षितिज
अम्बुधि-वसना पृथिवी
विस्तृत दश-दिक्, खगोल
दुर्गम अरण्य, चट्टान खंड, सर्वोच्च शृंग
सर्वत्र मनुष्यक व्याप्त आइ अछि विजय-रोल

लभ्य

निज चरण-चिह्नसँ सृष्टिक क्रम इतिहास बना
बढ़ि चलल मनुज सत्यक अन्वेषण मे तत्पर
बनि गेल जकर ई वेद, पुराण, स्मृति अनंत
उपनिषद आदि
अछि जकर गतिक रचना ज्वलन्त
तन सँ क्षयिष्णु, मन सँ ओ मानव अविनश्वर
ओ सत्यान्वेषी मनुज कि जे अछि अमर-प्राण
द्यावा-पृथ्वी मे सब सँ महती महीयान
द' रहल सृष्टि केँ असत्-मरण सँ क्रमिक त्राण
अधुनापर्यन्त न भेल सत्य उपलब्ध पूर्ण
नहि भेल असत्यक एखनहुँ धरि ई शिला चूर्ण
बढ़ि रहल शिखा-सम, ज्ञान-वर्त्ति लय मनुज-दीप
क्रमशः विनष्ट कय जटिल असत्यक अंधकार
सत्यक सुस्थापित करय विश्व मे शिव-सुंदर
इंद्रियातीत आलोक-रश्मि केँ निर्विकार।

रचनाकाल : 20 फरवरी 1951
वैदेही विशेषांक : 1951
(आत्मनेपद)

देवता आ पिरामिड

हे असत्य-वाहन, कुत्सित व्यक्तित्व,
हे संकीर्ण मनोवृत्तिक, अनुदार,
ज्ञानक निधि पर बैसल अजगर भेल
अहम्मन्य, दुर्दान्त-द्वेष मे लिप्त?
पहिरि असत्यक पूर्वाग्रह संयुक्त
तथाकथित ज्ञानक सड़लाहा खोल
बनि अपनहि तों मान्य, श्रेष्ठ, मूर्धन्य
चाटुकार-चर्चित, विश्रुत, विद्वान?
करह अपना आ अपना कुलक प्रशस्ति
राखह दुनू हाथें सुयश हँसोथि
अपना मने भनहि तों बड़े विशिष्ट
मुदा न कच्छपवृत्ति कदापि वरेण्य
बहुत काल धरि रखबह सब कें मोन
अपन कलुष, विद्वेष, नीचता हेतु
आजुक बनल देवता रहबह काल्हि
जन-मानस मे मृतक पिरामिड मात्र
तोरा उपेक्षें हमर न हैत अनिष्ट
सत्यक रेखा थिकै पहाड़क चेन्ह
भगजोगनी मे रहइछ कने' इजोत
मुदा अन्धकारे धरि छै' अस्तित्व।

(आत्मनेपद)

जयति जय गणतंत्र

जय हो बासठिक गणतंत्र
जे कोनहुना एकदिन लेल
बुझा जाइत अछि सबहि केँ
देश अप्पन आब नहि रहलैक अछि परतंत्र
उड़ाक' सबतरि तिरंगा
पहिरि खादिक कोट-अंगा
मानि ली जे सब गोटय छी
सर्वथैव स्वतंत्र
जयति जय गणतंत्र

मुदा ई सबटा लिफाफे मात्र थिक
असलियत मे एखन धरि नहि भ' सकल अछि
नीच-ऊँच-गरीब-मध्यम लोक एखनहुँ
सुखी वा सम्पन्न
नहि रहल हो क्यो विवस्त्र, निरन्न
नहि रहल हो क्यो अशिक्षित, दलित, दीन, विपन्न
से ने सरिपहुँ कहि सकै' छी
शासनक अधिकार जकरा छैक किछु उपलब्ध
से समस्त सुखी आ खुशफैल
विलेजलेबुल वर्कर्स सँ ल'
राज्य सभहुक मंत्रिगण धरि
सभक घर मे रहै अछि फगुआ दिवस भरि
रातिमे दीपावलीक उछाह

और बाकी लोक केँ रात्रिन्दिवा धयने रहै छै
विविध कर-भारक
अभावक तीन डिग्री धाह

जा ने भेटतै' लोक केँ भरिपेट सरिपहुँ अन्न
देह झाँपक हेतु नूआ
रोग लेल औषधि
रहबा लेल घर
आ जीविका लेल काज
ता कहू जे की हेतै लय अपन फुसिये राज?

ऊँच मंचक उपर चढ़ि जे
गर्व सँ फहरा रहल छथि
राष्ट्रध्वज केँ
अमुक नेता, अमुक अधिकारी
कि देशक कर्णधार महान
ओहि दिन केँ ताकि रहलै अछि स्वदेशक लोक
जहिया होनि हुनका एहि सभहक ज्ञान
से जखन भ' जैत
तखने हैत ग' ई देश सत्य स्वतंत्र
तखन जाक' हैत ग' चरितार्थ ई गणतंत्र
उठत तखने जन-मनक ई सम्मिलित शुभमंत्र
जयति जय गणतंत्र!

(आत्मनेपद)

ई उदास साँझ

बितलाहा जीवनक बात सभक पाउजि करैत
स्मृति केर एक-आध
टिमटिमाइत तारा ल'
शून्य मे अपनहि केँ टोबैत
थकमकाइत
उतरि रहल नहुँ-नहुँ
ई उदास साँझ

भादवक मेघक घन-आवरणसँ झाँपल सन
अस्पष्ट-अस्तित्वक बनि प्रतीक चान
कखनहुँ केँ झलकइ अछि
क्षण भरिक हेतु
आ पुनि
क्षण मे भ' जाइछ अदृश्य
झिलमिलाक'
जेना जीवनक शून्यता मे कहियो केँ चमकइ अछि
चिर-नीरव चिर-कुंठित
हमरा अभ्यन्तरक आकांक्षा बाँझ
तहिना क्षणजीवी, चिर-असंतुष्ट तिमिर-संधि
उतरि रहल नहूँ-नहूँ ई उदास साँझ!

(आत्मनेपद)

पूर्णिमाक संध्या

पूर्णिमाक संध्या
पतिव्रता
गृहलक्ष्मी सन
छाया बनिक'
रहलि कुल-वधू सन जे घर मे
दिन भरि
मौन
कर्म-अनुरता
आयलि थाकल रवि-पति विलोकि
मन केँ कहुना नहि सकलि रोकि
नहुँ-नहुँ नभसँ
उतरलि भू पर
सरियाक' ओ आँचर

ऊपर
कारी-कारी केश सजाक'
हुलकी दैछ चंद्रमा
देखितहि पड़ा गेलि
चुपचाप
लजाक'।

(आत्मनेपद)

आबहु तँ आउ

हमर अस्तित्वक वेदनाक
अप्रिय-दुरूह-भार हटब' लेल
हे हमर पाहुन
प्रतीक्षित अतिथि
हे हमर प्राणेश, हे हमर कांत
हमहीं टा छी सरिपहुँ
आ अहींक स्मृति अछि
विरहक ई राति
असह-दुर्वह-एकांत
भादवक भरल तिमिर
घटाटोप, भयावह
जेना हमर निस्सहाय निराशा दुर्दान्त
चमकि रहल एत'-ओत' रहि-रहि खद्योत
ई अहींक संस्मृतिक थिक मधुर इजोत

बौआइत जीवनक
औनाइत एहि क्षणक
भावाकुल हमर मनक
एकमात्र संबल हे
निरुपम नितांत
हे हमर प्राणेश, हे हमर कांत।

(आत्मनेपद)

भादवक साँझ आ हम

भादव मासक मेघ
भरल अछि
बरसि रहल अछि
विरह-दग्ध भ' प्राण
प्यास सँ तरसि रहल अछि
साँझ भ' रहल छै उदास
हम छी एकाकी
ई पिछराहा सड़क पाँतरक...
अछिए बाँकी

एखन दूर गन्तव्य
जा रहल छी गुमसुम हम
ओम्हर भरल अछि मेघ
एम्हर आतुर अन्तरतम
कोन विरहिणिक नोर भरल अछि
घास-पात पर
आबि रहल सन्देश ककर
तीतल बसात पर ?

(आत्मनेपद)

प्रथम वर्षा आ हमर मन

जेठ मासक दाह सँ पीड़ित प्रकृति केँ
आइ प्रथमे प्राप्त वर्षा-वात
आइ हरियर मन हमर आ भ' उठल अछि
आइ हरियर तरु-लता-तृण-पात
आइ हमरा मोन केँ सिहरा देलक तें
सजनि, अहँक सिनेह-सुधिक बसात
उतरि आयल जनु हृदय मे विगत नभ सँ
प्रणय-पुलकित प्रिय पुनीत प्रभात
वर्त्तमानक अहल्या जनु पाबि क' पुनि
अतीतक अनुराग-रज अवदात
चेतना संयुत परिस्फुट भेल सहसा
मन: सर मे संस्मृतिक जलजात
जीवनक संघर्ष मे लहि समय असमय
कटु दुखक यद्यपि बहुत प्रतिघात
तिक्त बनलो मन तथापि रहैछ सुन्दरि,
सरस सुमधुर अहँक छवि सँ स्नात।

(आत्मनेपद)

ज्योति-याचना

देवि, हमर अछि यैह याचना देल जाओ वरदान
हो सृष्टिक गलित अंग मांसल
मानव केँ भेटय अक्षय-बल
अछि दाह-विश्व-उर मे भीषण
शीतल हो दिय' अपन शुचि जल
आइ अमृत-सुत मृत अछि...
ज्योतिर्मयि, लय ज्योति अहँक जागय चिर-विस्मृत प्राण
देवि, हमर अछि यैह याचना देल जाओ वरदान

मानव-मन हो असमर्थ न, ई
द' दिय' देवि हे महामंत्र
हो अस्त न भाग्यक सूर्य, तेहन
गढ़ि दिय' आइ पुनि उदय-यंत्र
आइ प्रगति हम चाही...
पथ पर अगणित शतमुख-दीपक-ज्योति करय कल्याण
देवि, हमर अछि यैह याचना देल जाओ वरदान

अछि अंधकार सँ संकुल पथ
अवरुद्ध मनुष्यक जीवन-रथ
भ' गेल प्रगति अछि अगति आइ
मनु सुत अछि सोचि रहल इति-अथ
चौमुहानपर पहुँचल...
ज्योतिक एक किरण लै' व्याकुल मने मनुक संतान
देवि, हमर अछि यैह याचना देल जाओ वरदान

बल, साहस, पौरुष आ यौवन
जागय, हो सृष्टिक पुन: सृजन
हो वर्ण-वर्ग-विद्वेष नष्ट
कवि गाबि सकय ई स्वर नूतन
किंतु गहन-तम उर मे
आउ, कनेक दिय' कवि केँ अमृतमपि, किरणक दान
देवि, हमर अछि यैह याचना देल जाओ वरदान

रचनाकाल : 19 अगस्त 1948
(आत्मनेपद)

बटोहीक व्यथा

थाकल बटोही आ आबि गेलै निन्न
छलै जेठ मास
बेश कड़गर छल रौद
जेना जरै छल पृथिवी आ जरै छल अकास
जेठ छल किंतु हेठ भेल नहि पानि
सुखयले गृहस्थक छल एखनहुँ तक चास
ततबे नहि
सुखा गेल छलै खढ़ घास
बंद छल बसात
सकल व्याकुल छल जीव
छनहि छन लगैत छलै केवल पिआस
बाट आ बटोही छल बंद

ठीक ताही काल
दुपहरक समय छलै
जखन माल-जाल
गाछक तर बैसल छल, छल करैत पाउजि
चिड़ै-चुनमुनी तक छल तखन अवाक्
गर्मी सँ सकल विश्व भेल छल बेहाल
ओहि अकाल-बेला मे
माथ परक मोटा लय जाइत छल, कनेक
चिंतित सन, चित्त मे कल्पना अनेक
बटोही छल एक

विवश आ व्याकुल सन बटोही छल खिन्न
थाकल बटोही आ आबि गेलै निन्न।

बड़का टा पाँतर छल, बाट आरि–धूर
सुन्न छलै बाध आ बटोही छल चूर
पैर मे बेमायक छल फाटल दड़ारि
माथ परक मोटा
आ लगहि मे पसारि
अपन डारि–पात, छल परती पर गाछ
पाकड़िक बड़ पैघ, खूब झमटगर सन एक
मोटा केँ राखि, त्यागि तखन दीर्घश्वास
झाड़ि एक मोट सनक सीर केँ, बैसि
गमछा सँ करय तखन लागल बसात
सुस्ता ली कनिञे विचारि यैह बात
ओठङि गेल गाछ मे अङपोछा घुमबैत
बामा हाथें माथक किछु घाम केँ पोछैत
आ कने बसात सिहकल
कि लागि बटोहीक गेलै आँखि
शिथिल जकाँ ज'ड़ि मे बटोही केँ देखि
दुखे जेना छल कपैत गाछक सब पात।

दूर, बहुत दूर
(लागि जखन गेल छलै बटोहीक आँखि)
उड़ि गेलैक कल्पनाक लय कोमल आँखि
हृदय बटोहीक
पाबि तखन कने काल
चेतनाक दुख सँ ओ अपना केँ भिन्न
थाकल बटोही आ आबि गेलै निन्न।

'नाथ, जीवितेश!'
कोनटी लग ठाढ़ि भेलि सौंदर्यक मूर्ति

अधफुलैल यौवन, तितपरड़ी सन ठोर
चान सनक मुँह आ इजोरिया सन गोर
डबडबैल आँखि, करुण सौन्दर्यक वेश
छलि बजैत नहूँ-नहूँ 'नाथ, जीवितेश!'
सरिपहुँ चलि जायेब की प्राणक आधार,
से किऐक देव,
यैह तँ हम ऐलहुँ अछि, हाय रे कपार
एखनहुँ छथि सब क्यो एत' अनचिन्हार
ककरा पर छोड़ि विदा भेलहुँ परदेश
एखनहि? की अनने छलहुँ एही लेल?
अहाँ संग यैह पाँच सात दिन तँ भेल
नैहरेक बान्हल अछि एखनहुँ तक केश
मुदा अहाँ छोड़ि एत', चललहुँ परदेश
पाथर सन छाती क' नाथ, जीवितेश!'

दूर, बहुत दूर...
जखन कल्पनाक पाँखि बलें उड़ल छलै मोन
बटोहीक कि तखनहि चट खसल एक पात
वृंतसँ च्युत भेल
ठीक बटोहीक माथ
खसल जेना वज्र, फुजल आँखि, भेल छिन्न
कल्पनाक डोर, टूटि गेल जखन निन्न
विधवाक सिउँथि जकाँ
आगाँ मे छलै, वैह बाट सुन्न खिन्न
थाकल बटोही आ टूटि गेलै निन्न।

रचनाकाल : 13 मार्च 1949
मिथिला मिहिर : 25 जून 1949
(आत्मनेपद)

समाधान

आइ नूतन प्राण चाही
उठि रहल अछि कविक स्वर
विश्वक अमर कल्याण चाही
भेल अछि मरु युगक जीवन

श्रान्त विश्वक अखिल जन-मन
शुष्क धरणी नभक आङन
मे भरल अछि विकल क्रंदन
आइ क्रंदन दूर क'
हास्यक मधुर निर्माण चाही

उठि रहल अछि 'वाद' नव नित
भेल प्रति-मानव सशंकित
बुद्धिवादक प्रबल वात्या चक्रसँ
अछि युग प्रपीड़ित
आइ वादक व्यस्तता सँ
विकल युग केँ त्राण चाही

भेल अछि सब मार्ग संकुल
प्रबल तमसँ जटिल व्याकुल
काटि दारुण जाल तिमिरक
क' सकय जे जग निराकुल
आइ युग केँ एहन नव-किरणक
प्रखरतर वाण चाही।

रचनाकाल : 25 जुलाइ 1950
(आत्मनेपद)

दीक्षा

तों कियै बुझै छह अपना केँ निरुपाय बंधु
तों कियै बुझै छह भाग्यहीन छी निश्चय हम
ई भाग्य नपुंसकता ओ कायरताक एक
माया थिक, फूसि बहाना आ थिक केवल भ्रम
तोरा दूटा छह अति बलिष्ठ ई भुजा, सबल
कर-युग छह, जैसँ क' सकैत छह तों नहि की?
तों तोड़ि पहाड़क शिखर, फोड़ि ब्रह्मांडक घट
सब सुलभ सरल छह क' सकैत शक्तिक स्वामी!
तोरा छह दूटा नेत्र जाहि सँ तों सरिपहुँ
ल' नभक उच्चता सँ उदधिक तलधरि सबखन
पल भरि मे नापि सकै छह, प्रिय सर्वत्र सतत
छह प्राप्त तोरा जाग्रत दृष्टिक निर्बाध गमन
अद्‌भुत तोहर मस्तिष्क प्रखर जकरा बल सँ
करगत छह अनल, अनिल, रवि, शशि, नक्षत्र-निकर
ग्रह-उपग्रह छह नूतन स्थापित क' सकैत
पदगत छह तोरा लेल अशेष अवनी-अंबर
जे पुण्यक बदला स्वर्ग दैछ से व्यापारी
बनियाँ ईश्वर नहि दानी अछि, छह व्यर्थ-त्रस्त
थिक भाग्यवाद हारल असाहसिक तर्क-जाल
तों सर्वशक्ति-सम्पन्न करह निज पथ प्रशस्त।

(आत्मनेपद)

युग-संदेश

लै उद्दाम-प्रवाह प्रबल हम आबि रहल छी
जीर्ण-शीर्ण जिंजीर कड़कि' क' टूटि गेल अछि
अणु-अणु सँ संबद्ध दासता छूटि गेल अछि
नव-सूर्यक नव रश्मि गगन मे फूटि रहल अछि
सृष्टि आइ नव सृजन-पुष्प ई लूटि रहल अछि
विश्वक कण-कण सँ स्वागत हम पाबि रहल छी
लै उद्दाम-प्रवाह प्रबल हम आबि रहल छी।

हमर मार्ग थिक अपन स्वयं निर्माण भेल अछि
हमरहि जय सँ नियतिक चिर-कल्याण भेल अछि
सुनि हुँकार हमर, तिमिरक अवसान भेल अछि
हमर क्रांति-उद्घोषक चिर-सम्मान भेल अछि
अग्निक शत-शत शिखा कुचलि हम दाबि रहल छी
लै उद्दाम-प्रवाह प्रबल हम आबि रहल छी!

हमरा स्वरसँ गुंजित अछि ई गगन असीमित
जागू यौवन, हे अनन्त तेजोमय, दीपित
जागू हे दुर्द्धर्ष शक्तिधर, अटल, अकंपित
जागू, उठू, करू नवयुग मे प्राण संचरित
अग्नि-वीण पर युगक गीत हम गाबि रहल छी
लै उद्दाम-प्रवाह प्रबल हम आबि रहल छी!

रचनाकाल : 15 अगस्त 1948
मिथिला मिहिर : 19 फरवरी 1949
वैदेही : 1951
(आत्मनेपद)

सैनिकक पत्र

देशक नाम भेटल अछि
सैनिकक पत्र
पढ़ि रहल अशेष देशवासी सर्वत्र।

संबोधनक स्थान पर
व्यष्टि नहि, समष्टि अछि
मंदिर, मस्जिद, गिरजा आ गुरुद्वारा
खोपड़ि-मकानक एक समन्वित सृष्टि अछि।

लिखल अछि—
ताशकंद घोषणाक उल्लंघन
यत्र-तत्र अतिरिक्त चौकीक संस्थापन
कश्मीरक उत्तर वा चुंबीक घाटी मे
भ' रहल सैनिकक भारी जमाव
दू-दूटा आक्रमणक पड़ि रहल दबाव
एहि सभक देबा लय सक्रिय जबाव
हम सब छी सीमापर पूर्ण सजग आब

रात्रिन्दिव सावधान, सतत शस्त्र-हस्त
मृत्युंजय, कालजयी
लक्ष्य अछि प्रशस्त
मन मे अछि स्वर्गादपि श्रेष्ठ मातृभूमि
संगीतक सोझाँ अछि शत्रु त्रस्त, पस्त

निस्संशय हम छी; हथियार अछि
क्षमाक हेतु उठलाहा हाथ मे ललकार अछि
झुका के सकैछ हमर गर्वोन्नत भाल
घहरा रहलैक ककरा उपर मे काल?

मुदा अहाँ सबसँ अछि एकटा अनुरोध
बैसी ने केओ व्यक्ति पलभरि निश्चेष्ट
एक्को क्षण बंद हो न मशीनक गति तूर्ण
उत्पादन सब कथुक हो सबतरि परिपूर्ण
राष्ट्रक सब क्षेत्र मे हो सतत निर्माण
भरल रहय कारखाना, भरल रहय खान
भरल रहय घर-आङन, खेत आ खरिहान
बनि जाय सब तरहेँ आत्मनिर्भर देश
करइ जाइ सब केओ मिलि यत्न ई विशेष
विजय तँ अछि अपन सुनिश्चित सर्वत्र
देशक नाम आयल अछि सैनिकक पत्र।

रचनाकाल : 29 नवंबर 1965
मिथिला मिहिर : 10 जुलाइ 1966

अयला नहि जीवन-सिंगार

अयला नहि जीवन-सिंगार
सखी, हमर अयला नहि प्राणक आधार
आयल वसन्त, कंत प्रकृतिक; नव छवि अनंत
नाचि रहल मदिर सुरभि उन्मद भ' दिग-दिगंत
आयल पहु सभक देश अयला नहि सजनि मोर
मनमोहन प्रीतम सुखसार

अंग-अंग मे अनंग, भरि मन मे स्नेह-रंग
उमड़ि रहल अंतर मे प्रियतम केर सुधि-तरंग
अयला अछि फागुन केर पाहुन बरख दिन पर
लेने नवल उपहार

आमक कल-किसलय मे कोइली अछि कूकि रहल
मन मे के अंतर्हित मुरली अछि फूँकि रहल
मंजरीक कोबर मे चंचरीक मस्त भेल
बरसय मधु यौवन रसधार

फूलि रहल सीमर पलास बनल लाल टेस
चंपा चमेली कचनार द' रहल सनेश
अधवयसू नीमक अछि कनहा पर छिड़िआयल
टुस्सीकेर तन्नुक दुलार

संध्या सीमन्तनीक विहुँसि मीड़ि रहल गाल
कामातुर सूर्य, निरखि सर-सरिता भेल लाल
बारिक बसवारिक अछि फुनगी केँ लाज भेल
विहुँसि रहल आंगन-दुआर।

रचनाकाल : 18 फरवरी 1966
मिथिला मिहिर : 06 मार्च 1966

गीत

स्वप्न मे सहसा सुनल ई रागिनी
भेल चिर-प्रिय कल्पना साकार
भावना केँ प्राप्त नव आधार
प्राण नाचल पाबि जनु वरदान
मुक्त छल प्रत्यक्ष स्वर्गक द्वार
चिर-पिपासित छल हृदय म्रियमाण
पाबि पुलकित भ' उठल, पीयूष
विरह व्याकुल प्राण
आयल आइ मिलनक यामिनी
स्वप्न मे सहसा सुनल ई रागिनी

आइ आनंदक परम उत्कर्ष
उमड़ि आयल प्रिय अपरिचित हर्ष
प्राण सिहरल पाबि हुनकर आइ
रसस्निग्ध मृदु आङुरक स्पर्श
ओ छली जनु रुदन मे हो हास
चन्द्रिका सन स्वच्छ, कोमल पुष्प
जीवनक विश्वास
रसमयि मंजु कविता कामिनी
स्वप्न मे सहसा सुनल ई रागिनी

भेल सहसा रिक्त दृढ़ भुज-पाश
लुप्त सुख, प्रिय कल्पना, उल्लास

निन्न टूटल, झुलसि जीवन भेल
मरु पुन: छल विकल उष्णोच्छवास
सर्वथा छल स्निग्ध प्रणयक राग
पाबि हुनका, सुप्त कल्पक आइ
बिहुँसि जागल भाग
चमकल जनु बिलायल दामिनी
स्वप्न मे सहसा सुनल ई रागिनी।

रचनाकाल : 12 अप्रील 1947
मिथिला मिहिर : 5 जून 1948
मिथिला मिहिर : 6 मार्च 1966
(आत्मनेपद)

बरिसातक भोर, साँझ, राति...

भोर...

बरिसातक भोर
बसातक ई जन-बरिजना
मेघक करीन मे
बान्हि-बान्हि बिजुरी केर डोर
गरमीक हरँ जोतल धरतीक खेत केँ
दहो-बहो अरिया नंघान
पटा रहल आइ तोड़म-तोड़
क' रहल रहि-रहिक'
एम्हर आ ओम्हरसँ
पावस-गिरहथ केँ जलखै ले सोर
आइ तँ भोरे-भोर मोनक पोखरि मे
उठल अहँक सुधिक हिलकोर
नाचि उठल प्रणयकेर भोर
भागि गेल जेना विरह चोर
काँपि उठल कविता केर ठोर
विवशताक सूर्य यदपि
रहि-रहिक' हुलकै अछि
बरसि रहल तदपि
मिलन-आशाकेर बुन्न बड़ी जोर
बरिसातक भोर।

रचनाकाल : 11 जुलाइ 1966

साँझ...

बरिसातक साँझ
बरसि रहल रिमझिम प्रिय बरिसातक साँझ
नाचि रहल मन-मयूर
भेल मन काम पूर
विरह विकल धरणीकेर
भेल सकल ताप-दूर
बाजल मृदंग ढोल
झमकि उठल झाँझ
बरिसातक साँझ

गूँजि उठल प्रणय-गीत
हँसल मनक अतनु-मीत
लाजेँ कादम्बिनी प्रतीची अछि रक्तपीत
आबहु धरतीकेर रहत कोखि बाँझ?
बरिसातक साँझ

फूजल घन-कुंतल अछि
जंगल मे मंगल अछि
कामातुर चंचलाक छन-छन रस रंगल अछि
बरिसय मधु-श्रावणीक मधु-रस मन माँझ
बरिसातक साँझ।

रचनाकाल : 12 जुलाइ 1966

राति

आयल सघन राति बरिसातक
आइ राति भरि
घर-आँगन मे
हमरा मन मे
वर्षा रानी
मुक्त-कुंतला

मिलनातुर विरहिनी शकुंतला
पावस प्रियतम (प्रिय दुष्यंतक) संग
मिलि नाचत
आइ ने किन्नहु
हृदयक
एतेक दिनुका प्यासल 'संयम' बाँचत
ककरो सुधि
अंतरक
पूर्व निश्चयक अवश्ये खटखटैत जिंजीर
राति भरि
निन्न ने होयत कोनहुना
पुरिबा
बदरी केँ आलिंगित कयने
रहतै जा धरि
आयल सघन राति बरिसातक।

रचनाकाल : 13 जुलाइ 1966
मिथिला मिहिर : 31 जुलाइ 1966

पत्रोत्तर

खलियाहा मालक डिब्बा सन एककात
शंटिंग मे काटिक' राखल हो लाइन पर
उपेक्षित, निरर्थक आ रिक्त-शून्य मोन हमर
रंग-विरंगक वस्तुजात सहसा भरि गेल जेना
तहिना भरि गेल मोन सउँसे सर्वत्र
पहुँचल प्रिय नानाविध भावनाक पुंज लेने
आइ बहुत दिन पर ई अहाँक प्रेम-पत्र

पढ़िक' सभ ज्ञात भेल
पुलक अकस्मात भेल
स्नेह-सुधिक रंगसँ रोम-रोम लिप्त
जरल मोमबत्ती सन अभ्यंतर बरकि उठल
वेदनाक शिखासँ भ' क' उद्दीप्त

(पढ़िक' प्रिय पत्र अहाँक)
वाणविद्ध क्रौंच जकाँ
विरह-विकल मन पंछी गेल छटपटाय
तड़पि-तड़पि आहत भ' व्याकुल निरुपाय
सुधिक केबाड़क कुंजी बजाक' ई
खोलि देमक नहुँ-नहुँ करइत संकेत

पत्रक प्रति हस्ताक्षर एक-एक यात्रीसन
अंतरक प्रकोष्ठ मे भ' क' समवेत

पैसि गेल मौन-मुखर
आकुल मन-प्रान
पतझाड़क पात जकाँ नयन-तरुक अश्रु-पत्र
झरल, सुधिक पाबि पुनः पीड़ा-पचमान

उत्तर मे हृदयेश्वरि, यैह समाचार...
जे विविध अभावक चक्रव्यूह मे पड़िक'
आवश्यकताक अनेक महारथीक प्रहार
सहि-सहिक' जीवन-अभिमन्यु लेल पराभूत
इच्छाक उत्तरा विधवा भ' गेलि
आ भविष्यक परीक्षित गर्भस्थ औना रहल
दुःशासन-जीविकाक हाथेँ सखि, द्रौपदीक
चीर जकाँ, विरहक दिन बढ़ले अछि जा रहल।

रचनाकाल : 26 अक्तूबर 1964
मिथिला मिहिर : 15 नवंबर 1964

काल-घोष

सावधान! सावधान!!
देश भरि मे गूँजि उठल आइ एक तान
शूरताक गान
सावधान, सावधान!

शोर करैछ हिमालय, जम्मू-कश्मीर
भाखड़ा, दुर्गापुर, हटिया, जमशेदपुर
नेफा, लद्दाख आ सिक्किम, भूटान
बंगालक खाड़ी, कन्या कुमारी
गंगा आ बह्मपुत्र, सतलज आ कावेरी
सबतरि अछि आकुलता
औनाहटि
आक्रोश
आसमर्द क' रहल अन्हड़-तूफान
सावधान, सावधान!

आइ कोनो पार्थ केँ नहि छनि व्यामोह
सुनब' नहि पड़तनि पुनि कृष्ण केँ गीता
राष्ट्रक प्रत्येक व्यक्ति बनल अछि अर्जुन
कर्त्तव्यक गाण्डीव क' रहल संधान
सावधान, सावधान!

क'ल कारखाना आ खेत-खरिहान

बनि रहल रण-भूमि
युद्धक मैदान
ह'रसँ-फा'रसँ, हरबे-हथियारसँ
सबतरि करइ जाइ राति-दिन निर्माण

बनैत रहैक बन्दूक...
गोली...
जहाज़..
लोहा, इस्पात, फौलाद बनैत रहय
युद्ध लेल, राष्ट्र लेल आवश्यक सामान
नानाविध अन्न, फ'ड़, तीमन-तरकारी
उपजैत रहय गहूम, उपजैत रहय धान
केवल सीमे टा पर नहि
प्रत्येक मोर्चा पर
एक-एक देशवासी बनि जाइ 'जवान'

एहिना रहय चालू ई आयोजन अविश्रांत
अहर्निश एहिना सब एक जूति भेल रही
हिन्दू, ईसाई आ सिक्ख, मुसलमान
एक-एक बच्चा बनय अब्दुल हमीद
एक-एक बच्चा बनय शास्त्री-चह्वाण
जागि उठय प्रलयंकर कोटि-कोटि प्राण
जागि उठय भारतक सुप्त स्वाभिमान
एम्हर हो उत्पादन, ओम्हर रक्तदान
तन-मन-धन-सर्वस्वक क' दी बलिदान
स्वातंत्र्यक दीपशिखा क' रहल आह्वान
सावधान! सावधान!!

रचनाकाल : 28 नवंबर 1965
मिथिला मिहिर : 2 जनवरी 1966

जिनगी : चारि टा दृष्टिखण्ड

एक

जिनगी थिक
टिकट ट्रामक
अपन स्टापेज धरि
यात्रा क'
ओकर उपभोग क'
चुपचाप
दैत अछि लोक जकरा फेकि।

दू

जिनगी थिक
एक रचना
जे अपन शीर्षक सहित
छपि जाइछ
जँ संपादक रहथि दहीन
तखन होयत ने मेष अथवा मीन
नहि तँ अस्वीकृत बनाय
सखेद
प्रेषके लग होइछ पुनि डिस्पैच।

तीन

जिनगी थिक
आदिसँ ल' अंतधरि
दू आँगुरक बस बीच मे
सुनगैत सन सिकरेट
जे पीबिक'
कोनो गली मे फेकि
अपनहि पयर तर
अछि दैत लोक मोचाड़ि।

चारि

जिनगी थिक
न'व कविता
किछु गोटे केँ
जकर होइ छै
किछु गोट केँ न'हि
भावक बोध
अर्थक बोध
बोधगम्यो होइत जे
कहबैत अछि दुर्बोध।

रचनाकाल : 25 जुलाइ 1966
मिथिला मिहिर : 4 सितंबर 1966

एकटा अकविता : अकालक मेघ

मेघ अबै अछि साजिक'
भागि जाइत अछि
ऊपरे-ऊपर
बिजुरीक लाठी भाँजिक'
घोल-फचक्का
पढ़िक' गारि
थूक पानकेर
छिटका मारि
लंक लैत अछि
जहिना कोनो लंगटा
जे-से बाजिक'
बिना बरिसने पड़ा जाइत अछि
कहि नहि की अंदाजिक'
मेघ अबै अछि साजिक'।

रचनाकाल : 13 अगस्त 1966

[ई एहि सालक आधुनिक मेघक प्रसंग लिखल गेल अछि जे दिन मे खूब घटाटोप आ राति मे साफ रहैछ जे दू-चारि बेर फुही-फाही छिड़ियाक' बिला जाइत अछि आ जकरा लोक 'अकालक मेघ' कहि रहलैक अछि—कवि।]

खंडित समन्वय

फरफराइत बिहाड़ि
आ शून्य संकुल हम
वृत्तहीन
केंद्रच्युत
एक रिद्म—एक 'सम'
सीमन्तिनी रूपसीसँ
की ककरो होइत छैक
आकर्षण कम ?

मिझा गेल स्मृतिकेर
दयनीय मुद्रा
समर्पणक पूर्वहि
भखरि गेल रंग
कोन अपर्णाक भेल तपोभंग ?

ढेप फेकला पर पोखरिक पानि मे
होइत छै तरंग
तरंगक विस्तार
विस्तार आ पसार
पसारक सीमा थिक निश्चय महार
मुदा हम ने कएने छी
अहाँक सिनेह
आ सिनेहक सिंगार

ई जे फन काढ़ने ठाढ़ि अछि
अतीतक अनागता
नतमस्तक जकरा लग
कालक भुजंग
आतुर प्रतीक्षाक उद्धत अनंग
से थिक द्रौपदी
असंख्यक संग

बहुत ठरल होइत छैक
ओकरा मोनक अन्हार
जकरा केवल मरबाक छैक
मरबाक अतिरिक्त आर
किछु नहि करबाक छैक।

रचनाकाल : 8 सितंबर 1966
मिथिला मिहिर : 25 दिसंबर 1966

यात्राक सार्थकता

उठि रहल डेग
बढ़ि रहल वेग
संघर्ष मोनि मे
बाझल आ चकभाउर दैत
जीवनक नाह
द' रहल भुजा केँ न'व जोर
मन्सूबाकेर उठइछ हिलोर
आगाँ बढ़बाकेर शपथ दैछ
कंटकित पथक प्रत्येक 'मोड़'
उद्घाटन अछि क' रहल जेना

प्रत्येक बेर भोतिआएब
एकटा नव दिशाक
नव सूर्योदय केर उद्घोषक
होइछ अन्हार जहिना निशाक
बुझि लेत अवश्ये
हमरा पाछाँ आबि रहल नवका पीढ़ी
सृष्टिक आरम्भेसँ ल' क'
अछि बनल
मृत्यु
सभ बेर हमर
जीवनक सुदृढ़ अगिला सीढ़ी
यात्राक प्रतिचरण सार्थक अछि

ई सबटा श्रेय इजोतक थिक
जे एक-एक 'इति'
चिर-सशक्त
ऊर्जस्वल
'अथ' केर द्योतक थिक

आहत सैनिक केर घाव जकाँ
भरि रहल पराजय भावक व्रण
अगिला मोर्चा लेल
प्रस्तुत अछि
शाश्वत योद्धा
ल' नूतन प्रण
नहि अस्वीकृति
नहि अविश्वास
नहि निराशाक कटु गाथा अछि
असफलताक प्रत्येक श्वास मे
दीपित जीवन-आस्था अछि।

रचनाकाल : 10 सितंबर 1966
मिथिला मिहिर : 27 नवंबर 1966

एक अ-कविता : तीन पाराग्राफ

क्रियाशीलन

छूटि रहल अछि
घर-आँगन आ लोक-वेद
कीनब-बेसाहब, माल-जाल
गाछी-बिरछी आ बाध-बोन
सन-सन-सन
सनन-सनन-सन
लगइछ तेज वायु
भ' रहल क्षिप्रतर यात्रा-गति
कटि रहल वेगसँ काल-खण्ड

परिणति

थमि गेल जेना सहसा प्रवाह
सर्पाकृत गति...
कंपित...
कुण्ठित
अवरोधक भीषण स्फोट
'बर्स्ट' घूर्णित चक्का
दुर्घटना केर संत्रास
प्रबल आघात एक
आहत पद
किंतु अनाहत मन।

अनुभूति

अछि बेर-बेर भ' रहल दर्द
(सरिपहुँ
की कालक अंतहीन धारा मे
बुदबुद मात्र लोक?)
शय्याश्रित ई विश्राम
अनस्थिर...गतिवियुक्त...वेदनाबिद्ध
कहि रहल कान मे अनाहूत
प्रिय 'व्यतीतं हि न निवर्त्तते'।

रचनाकाल : 21 अक्तूबर 1966
मिथिला मिहिर : 30 अक्तूबर 1966

(25 सितंबर 1966 केँ शिक्षक संघक काजें सुखपुर जाइत छलहुँ श्री विद्यानन्द प्रसाद सिंहक संगे, खूब वेग सँ जाइत मोटरसाइकिलक अगिला चक्काक बर्स्ट भ' जयबाक कारणे संतुलन—च्युत भ' खसि पड़ला सँ आहत भेल डाक्टरक 'बेड-रेस्ट'क पालन क' रहल छी। बामा ठेहुन अत्यधिक चोट सँ फूलि गेल, अशक्त बनल अछि। सात दिन भ' गेल, एक्कैस दिन आरो एहिना रहय पड़त। एहि संदर्भक ई कविता थिक—किसुन)

एकटा अ-कविता : दुस्साहसी

सरिपहुँ आइ-काल्हि
गदहा केँ बाप कहबाक एहि युग मे
ओ थिक दुस्साहसी
अथवा थिक गदहा
जे गदहा केँ बाप कहबाक बेगर्त्ते मे
बाप नहि कहि क'
गदहा कहि दैत अछि।

रचना : 16 अगस्त 1966
मिथिला मिहिर : 18 सितंबर 1966

मनुक्खक खोज

कालिहखन भेटल छल
काल्हुक अखबार
छपल छैक जाहि मे
एक समाचार
जे
'एक व्यक्ति अद्‌भुत अछि
नाम थिकै ज्ञान
देश-विदेश मे क' रहल
मनुक्खक अनुसंधान।'

आनक काज करबाकेर
हमरहु अछि दोष
तेँ भेल हमरहु
सहसा ई जोश
जे ताकी हमहुँ कतहु
एक्को टा लोक
जे हो अगबे मनुक्ख

बिना रोक-टोक
पैघ-पैघ शहर
आ छोट-छीन गाम
ताकय लगलहुँ अछि
हमहुँ सबठाम

ओकरो छपलैक अछि
अनुभव केर बात
हमरहु अछि भेल ई
अनुभव साक्षात
मनुक्खक लगौने अछि
सब केओ नकाब
होइतहि ने अछि भरिसक
मनुक्ख कतहु आब

जौँ कतहु भेटि जाय
बंधु! अत्र-तत्र
तँ हमरा लीखि देब
जल्दीसँ पत्र!

रचनाकाल : 2 नवंबर 1966
वैदेही : मार्च 1967

सत्ताक मद

दिनकर नहुँ-नहुँ अस्ताचल दिस
जा रहल छला भ' श्रान्त लाल
नभ-सर मे पसरल दिन भरि सँ
क्रमशः समेटि निज किरण-जाल

दिवसावसान बुझि निकट
नीड़ दिस विहग जाइछ करइत चुनमुन
नेरू लेल आकुल पयस्विनी
गर मे बजैछ घंटी टुनटुन

पथ मे द्रुतगतिऐं चलि अयला
नृप निकट एकअर्थी ब्राह्मण
सम्राट युधिष्ठिर सम्पादित
क' रहल छला कर्त्तव्यक क्षण

उठबा पर छल दरबार, सभासद्
निष्पादित क' कृत्य सकल
जयबा ले' उद्यत धर्मराज दिस
तकइत छला, भेल चंचल

अबिते विप्रक, सिंहासन सँ
सम्राट उतरि सेवा तत्पर
ब्राह्मण केँ देलनि अभिवादन युत
पाद्य, अर्घ्य, आसन सत्वर।

कर जोड़ि युधिष्ठिर महाराज
बजला' तत्क्षण विनयें अवनत
'की अछि आज्ञा हे विप्रवर
कहू करू कृपा हे धर्म निरत्?'

आदरें तुष्ट ब्राह्मणक विनिर्गत
भेल तखन आशीर्वचन
'जय हो विजयी सम्राट, सत्यवादी,
प्रणपालक, शत्रुदमन!

अछि चिर दिन सँ हमरा मनमे
सम्राट सुयज्ञक अभिलाषा
तिल-घृत-अक्षत-यव प्रभृति
प्राप्त होमक अपने सँ अछि आशा

तें समुपस्थित अपनेक ओत'
हम भेलहुँ सम्प्रति अर्थीजन्।'
'आज्ञा सेवक केँ शिरोधार्य'
बजलाह युधिष्ठिर नम्र वचन

'कृपया विश्राम करी अपने
एहिठाम आइ हे महीदेव
जे-जे अछि ईप्सित सकल वस्तु
से सभ निश्चय हम काल्हि देब

सूर्यास्त समय समुपस्थित अछि
दिनकरो पहुँचला' अस्ताचल
सायं सन्ध्यार्चा समय भेल
तें काल्हि देब जे अहाँ कहल।'

ई सुनिते ब्राह्मण केँ सादर
सेवक पहुँचौलक अतिथि सदन

सम्राट उठि प्रस्थान कयल
करबा ले' शुचि संध्या वंदन

एमहर पूजागृह मे सायं सावित्रीक
लगला' ध्यान कर'
ओमहर वाद्यालय पहुँचि भीम
लगलाह नगाड़ा केँ बजब'

'कड़-कड़-धम' भीमकेर ताड़ित
चहुँदिस व्यापल ई भीमनाद
सभ चकित भ्रमित विस्मित छल जन
पसरल अग-जग मे स्वरोन्माद

असमय भीषण स्वर सँ व्याकुल
विक्षुब्ध भ' उठल सभक कान
अर्चनालीन सम्राटक बारंबार
भग्न भ' गेल ध्यान

संकेत पाबि सम्राटक दौड़ल
वाद्यालय दिस बहु अनुचर
घूमि कयल निवेदित महाराज केँ
हाथ जोड़ि सेवक सत्वर

'हे देव, बजा रहलाह नगाड़ा
भीमसेनजी झूमि मस्त
द्रुतगतियें पिटने बहराइछ
स्वर महाभयंकर अस्त-व्यस्त

सुनि क्षुब्ध विस्मयान्वित तुरन्त
सम्राट पहुँचला' वाद्यालय
जत' भीमसेन बजबैत छला'
द्रुतकरें नगाड़ा नि:संशय

पाछाँ सँ सहसा पहुँचि
भीमकेर पकड़ि लेल सम्राट जखन
अवरोधें क्रुद्ध बनल निर्झरवत
कुपित भीम घुमलाह तखन

सम्मुख समुपस्थित महाराज लखि
भीम भेल लज्जित कनेक
बजलाह, 'देव, हम रोकि न पऔलहुँ
अपन मनक हर्षातिरेक

जीवन मे सभ सँ पैघ हर्ष
सम्प्राप्त आइ अछि भेल तात
हर्षाकुल तकरे अभिव्यक्तिक
हित कयल कृत्य ई हम हठात

की करू हर्ष नहि रोकि भेल
ई तेहने भेटल हर्ष आइ'
सुनि तखन युधिष्ठिर चकित भेल
स्मित वदन बाजि उठलाह—'भाइ!

दुर्मद दुर्योधन दुरभि सन्धि सँ
द' देने छल दुष्ट गरल
जल क्रीड़ारत मृत पुनि जीवित
भेलहुँ जहिया हे बंधु सरल

की जरासिंधु संहारक दिन
नहि भेल एते आनंद ज्ञान?
दिग्विजय-क्रम मे छल जीतल
जहिया कुमारपति श्रेणिमान

कौशलक बृहद्वल, काशिराज
राजा सुबाहु केँ जीति सकल

पऔलहुँ पौरुषकृत परमादर
हे पुरुषसिंह यश अति निर्मल

द्रौपदी लेल सौगन्धिक सरसिज
संग्रह क' कुबेर-सर मे
संहार क्रोधवश क्रव्यादक
कयलहुँ जहिया हिम प्रांतर मे

सैरन्ध्री रूपिणी द्रौपदीक
छवि मुग्ध कीचकक कामानल—
केँ भस्मसात कयलहुँ जहिया
क' कीचक केर संहार प्रबल

वहलीक शल्य आ शकुनि कर्ण केँ
रण मे कयलहुँ व्यस्त चूर्ण
सारथियुत द्रोणाचार्यक रथ केँ —
कयलहुँ जहिया चूर्ण-चूर्ण

कौरवक सकल रथ-गज-सेना—
संहार दु:शासन रक्तपान
कृष्ण पंचालिक मुक्त केशपाशक
कयलहुँ चूड़ा विधान

दुर्योधनसँ क' गदायुद्ध
पापी केँ भूशायी कयलहुँ
हे महाबाहु निज प्रबल पराक्रम सँ
रण मे जे जय पऔलहुँ

की तहिया नहि ई हर्ष भेल
जे आइ भेल अछि हर्ष एहन
की प्राप्त भेल की हेतु भेल
थिक भीम! कहू आनंद केहन?'

सुनि सांजलि भीम बाजि उठला'
'जय-जय करुणालय, धर्मराज,
अनुत्यागी, सत्यक पालक,
हे रहित क्रोध-मद-मोह-ब्याज!

चर-अचर जगत मे स्थूल-सूक्ष्म
अछि जते' जीव आ वस्तु-निचय
सभ किछु थिक भंगुर, क्षणजीवी
सभ सृष्टिक निश्चित छैक प्रलय

जे जनमल, मरण तकर ध्रुव अछि
के भेल आइधरि कालजयी?
सर्वाधिक बली काल केवल
ई सकल सृष्टि थिक मृत्युमयी

जग मे अछि सभ सँ पैघ सत्य
आ निश्चित केवल 'मृत्यु' तात
के अछि जग मे जकरा हो जीवन
आ मरणक क्षण पूर्व ज्ञात?

जे एकबेर बहरायल से पुनि
प्रत्यावर्तित होयत श्वास
नहि भेल आइधरि जग मे
ककरो महाराज ई सुविश्वास

हम सभ तँ साधारण जन छी
प्रतिवचन सत्यसँ जाइछ हूसि
मुदा सत्यवादी अग्रज, नहि
भ्रमहुँ बजै' छी अहाँ फूसि

से आइ सभा मे ब्राह्मण केँ
'हम काल्हि देब' ई वचन देल

हे नरपुंगव, ई अहँक वचन
हमरा आनंदक हेतु भेल

जे एहन जेठभाइक लघुभ्राता
सरिपहुँ बड़भागी हम छी
गंधर्व सुरासुर नर किन्नर मे
हम की ककरो सँ कम छी?

जकरा अग्रज केँ छैक सुनिश्चित
मन मे ई विश्वास प्रबल
जे रहब काल्हि धरि हम जीवित
ई कालजयी छै' अंतर्बल

एहि सँ बढ़ि हमरा आर हर्ष
की भ' सकैत छल महाराज?
तें रोकि न सकलहुँ हर्ष
तकर अभिव्यक्तिक हेतु ई कयल काज

तन-मन मे सहसा उमड़ि उठल
हर्षातिरेक सँ हम भगलहुँ
आ उन्मद भावें शीघ्र नगाड़ा
झूमि-झूमि बजब' लगलहुँ

हमरा काजें विघ्न भेल
संध्या वंदन मे नय-विरूद्ध
छी अपराधी निरूपाय विवश
हे पुरुष श्रेष्ठ! नहि होउ क्रुद्ध!'

ई सुनिते सहसा धर्मराज
भ' उठला' तत्क्षण पानि-पानि
भीमक वाणी सँ युधिष्ठिरक
उपजलनि मोन मे महाग्लानि

बजलाह 'वृकोदर, सत्य-सत्य
अछि अहँक कथन शुचि ज्ञानप्रद
सभ सँ बढ़ि मादक होइछ विश्व मे
विभ्रमकारी राज्यक मद

देहाभिमान सँ युक्त मनुज
भ' जाइछ सर्वथा अविचारी
सरिपहुँ मदांध भ' जाइछ
विवेकी पुरुषो भ' सत्ताधारी

तें अनधिकार ई वचन भेल
तें भेल मोह सँ ई अनर्थ
नहि होइछ मरणधर्मा मानव
कथमपि ई बुझबा मे समर्थ!'

ई कहि तत्क्षण सम्राट युधिष्ठिर
ज्ञान-विनय-मतियुत प्रबुद्ध
भ' उठला सहसा मौन, त्वरित
भ' गेलनि कण्ठ वाष्पावरूद्ध!

रचनाकाल : 14 दिसंबर 1966
मिथिला मिहिर : 5 फरवरी 1967

पुरानक मृत्यु आ नव वर्षक जन्म

एक

सुनू-सुनू ई सद्य:घोषणा
क' रहल जे निर्भय आ नि:संशय वर्त्तमान
डेथ कालम लेल एकटा छोटछीन समाचार छोड़ि
मरि गेल घबहा कुकूर जकाँ
क्षण-क्षण आ कण-कण केँ बीति चुकल
झुल-झुल बूढ़ ई अतीत, ई पुरान
काल 'बस'क चक्कातर पिचाक'
छहोछित्त भेल
सरिपहुँ हे मित्र!
पुरानक मृत्यु भ' गेल।

कातमहक किछु गोटे केँ ई दृश्य
बहुत प्रिय छैक
ई सड़ाइन गन्ध
ई लावारिश लहाश
एकर घिनौन रक्त
एक मांस-हाड़-चाम
सभक फोटो ल' ल' क'
कतेक गोटय क' रहल अपन ऊँच नाम
किछु गोटय एकरे पोस्टर ल' हाथ मे
गली-गली, सड़क-सड़क घूमि रहल तमाम
जोर-शोरसँ क' रहल 'नारा'क विस्फोट

चलि गेल 'बस' केर नम्बर केँ नोट
मुदा समय स्वीपर स्वयं सभटा हटा देत
नहि तँ यातायात भ' जयतैक रूद्ध, सड़क 'जाम'
हे पुरान वर्ष राम-राम।

दू

रातुक करिया तुराइ केँ चौपैति क'
प्राची प्रात: स्नान क' पहिरि रहल साड़ी
स्वर्ण वर्ण 'वास एंड वेयर'
मुस्कुराइत मंद-मंद
विहुँसि रहल नगर-ग्राम
वर्त्तमान आ भविष्य
घर-आँगन, गाछ-वृक्ष, बाड़ी आ झाड़ी
मृत्युक अन्हार सँ बहराइत अछि इजोत
साँझहि सँ बन' लगैत अछि सरिपहुँ भोर
विगते केर अंत थिक नूतन अनूप
पुरानक बाद अबैत अछि 'नव' मंगल रूप

आबि रहल नव शिशुक
करैत जाइ स्वागत
नव्य वर्ष, भव्य हर्ष,
हे निरंतर क्षयधर्मा, युग-युग सँ शाश्वत!

रचनाकाल : 17 दिसंबर 1966
मिथिला मिहिर : 8 जनवरी 1967

पतझार

अहाँक प्रेमक व्यथा
जे बिसरल छलहुँ
आ तें एम्हर किछु दिनसँ
पहिने सँ सम्हरल छलहुँ
से ओहि दिन अहँक पत्रक उष्मा मे
स्मृतिक तेहन बसात चलल
जे बालु मे दबल कागतक टुकड़ा
अनचोके मे, उघड़ि गेल
व्यस्तताक गरदा उड़ि गेलैक ऊपर सँ
मोन हमर उड़ियाक'
भेल अस्त-व्यस्त
डूबि गेल मौन मे
कोलाहल समस्त
अनुभूतिक गाछ मे
लगलैक बसात
झर' लागल पीतवर्ण
पुरना सभ पात।

रचनाकाल : 15 जनवरी 1967

मनुक्ख जिबैत अछि

के कहलक जे मनुक्ख मरि गेल?
ई कथन फूसि थिक
ओ जिबैत अछि
जिबैत रहैत अछि
मृत्युक तमिस्रा जीवनक सूर्य केँ
प्रतिदिन मारियोक' असफल रहैत अछि

सभदिन भोर केँ
अंधकार चीरिक'
होइत अछि असंदिग्ध
ज्योतिक विस्फोट
ऐतिहासिक सत्य थिक
जिनगीक चोट।

मनुक्ख थिक सत्य
मनुक्ख थिक शिव...सुंदर
मनुक्ख थिक तथ्य
तें ओकर शिल्प, ओकर सृष्टि
गद्य, पद्य, चित्र आदि रचना समष्टि
प्वाइंट ऑफ ऑर्डर
फाइल परक नोट
जुलूस महक नारा
चुनाव कालक वोट

इजलास परक जजमेंट
दस्तावेजक ड्राफ्ट
बाप पित्ती बहु-बेटी
सभ केँ लिखल पत्र

एक एक शब्द, अर्थ, एक एक अक्षर
रुदन-हास्य-गानकेर
एक-एक स्वर
समाज आ कि व्यक्ति
खाहे हो अस्वीकृति
खाहे स्वीकार
बनि गेल सार्वजनीन
विश्वक संपत्ति
जिनगीक आगि मे
मृत्यु जरि गेल
के कहलक जे मनुक्ख मरि गेल?

रचनाकाल : 21 फरवरी 1967

निवेदित

हम की करू?
हमर प्रेम
फोटोक ओ फ्रेम तँ नहि थिक
जे फोटोक पुरान भ' गेला पर
वर्षाक टघार सँ
दिवार आ उचरिनक चटलासँ
दूरि भेल एक फोटो केँ हटाक'
दोसरा मे फिट क' देल जाइत अछि

हम की करू?
हमर प्रेम;
'पिकासो'क कलाकृति तँ नहि थिक
जे संरचनाक प्रक्रिया सँ
रूपायित होइत अछि
आरंभक क्षण सँ फिनिशिंग टच धरि
नियोजित यथार्थ केँ अभिव्यक्ति दैत अछि
प्रदर्शनी मे सजला पर
जकर स्तुति लोक गबैत अछि
अमूर्त्त केँ मूर्त्त करक जे महिमा पबैत अछि।

हम की करू?
हमर प्रेम;
कोनो एहन वस्तु तँ नहि थिक

जे हम कीनिक'
पौरिक' की ओरियाक'
भार मे साँठि दी
बेन मे पठा दी
की उपहार मे अर्पित क'
नैवेद्य जकाँ उत्सर्गि दी।

हम की करू?
हम स्वयं नहि निश्चयत: बुझैत छी
जे हमर प्रेम;
संगति थिक की विसंगति
स्थापित थिक की संभाव्य
पजेबा थिक की पजेबाक माटि

हम की करू?
हम स्वयं नहि बूझि पबैत छी
तें हम अपन प्रेम
जे भरिसक अवश्य हमर 'हम' थिक
हमर समग्र सत्ता
से हम अहाँ लग निवेदित करैत छी
अपन समस्त अज्ञान
समस्त ज्ञानवत्ता।

रचनाकाल : 4 अप्रैल 1967
मिथिला मिहिर : 23 अप्रैल 1967

अनिवेदित

अहाँक प्रेम की थिक
से बूझल अछि अहाँ केँ
नीक जकाँ
बंधुवर!
ताहि लेल धन्यवाद
नारिकेर फड़ैत छैक
कुसियार उपजैत छैक
डोरी आ डोल, क्रैंक-चेन
सब बिकाइत छै

कबीर जे कहियो कहने छल
प्रेम न बाड़ी उपजै
प्रेम न हाट बिकाय
राजा परजा जेहि रुचै
सीस देइ लै जाय
से कबीरबा लुच्चा छल

प्रेम तँ अहाँक दरबाजा पर फड़ैत अछि
अहाँक बाड़ी मे उपजैत अछि
अहाँक प्रेम तँ हाट आ बाजार मे
महग-सस्त बिकाइत अछि
अहाँ पर प्रेमक निसाँ खूब चढ़ल अछि
घर आ आँगन मे

झोल आ गर्दा जकाँ
बंधुवर, अहाँक प्रेम सौंसे भरल अछि।
पुत्र, मित्र, बंधु, छात्र, पत्नीकेर हाट मे
अहाँक प्रेम-संगीतक भाव
सब दिन बिकाइत अछि
वाह, वाह नारियर केँ
छोड़ा-छोड़ा खूब खाउ
व्यर्थ स्वाद कहने की ?
रौदे मे हृदयक घी केँ खूब बरकाउ

नारियरक खोंइचाक जारनि
खपलोइयाक ओरिका
फ'ड़ महक पानि तँ
फाओ मे भेटैत अछि
कुसियारक गुल्ला केँ
बेस चिबबैत छी
सिट्ठी तँ आइधरि खूब जमा भेल होयत
कुसियारक तौल ल' राटन अछि कोन-कोन ?

दूध मध्य अंतर्हित
नेनुक समान प्रेम
मथला सँ फक्क द' क'
ऊपर अलगि जाइछ
मथला सँ किछु ने किछु
मक्खन बहराइते छैक
शर्त्त ई जे सुच्चा हो
आ से जँ सुच्चा होमक विश्वास अछि
तँ ताहि लेल बधाइ हमर

अहाँक प्रेम तँ भरिसक
मधुमाछीक छत्ता सन

लोक केँ जखन-तखन
'रस' दैत रहैत छैक
सुच्चा ग्रामोद्योगक
पूर्ण अहिंसक मधु
मुदा कहियो
मधु गाड़ि लेल गेल छत्ता सन
अहाँक प्रेम
रुक्ख, छुच्छ, फोंक तँ ने बनि जाइछ?
जकर एकटा उपयोग करैछ
स्त्रिगण टिकुली सटबा मे

नैमित्तिक व्यवहार केँ जे
प्रेम मानि बैसल छी
से अपना बुझलाहा प्रेम केँ
नीक जकाँ धयने रहू
मुदा कने एकबेर
नीक जकाँ चीन्हि लेब
धयने जे छी से सरिपहुँ की प्रेमे थिक?

रचनाकाल : 3 जून 1967

(हमरा 'निवेदित' 23 अप्रैल 1967क मिहिर मे प्रकाशित कविताक प्रत्याख्यानवत श्री अमर (चंद्रनाथ मिश्र अमर) भाइक 'प्रणिवेदित' 14 मइ 1967 क मिहिर मे कविता प्रकाशित भेल। ई तकरे उत्तर मे सुपौल सँ रांची जयबाक क्रम मे 3 जून 1967 केँ मानसी सँ बरौनीक रस्ता मे ट्रेन मे लिखल गेल।)

दूटा कविता

बनियाँ

सेठ सुरुजमल
भोरे-भोर नहा-सोनाक'
लाले-लाल चाह पीबि
गगनक दोकान आबि
करैत अछि व्यापार
नाना प्रकार
दिन भरि ई घूमि-घूमि
साँझ होइत
दोकान-दौरी बन्न क'
करिक्का चादरि पर
छिड़िया क' रेजकी
गनैछ सगर राति

मेघदूत

कालिदासक यक्षिणी
विरह-वारि नहा क'
पसारि देलक केश
झाड़ि रहल नहुँ-नहुँ
भिजलाहा नुआ-वस्त्र
तितलाहा केश
गुनगुना रहलि सुनू
विरहा आ देश
मेघदूत सुना रहल
यक्षक सन्देश

रचनाकाल : 26 जून 1967

बलात्कार

खिसिआउ जुनि
दाँत पीसि अनेरे खिया लेब।
हम जे कहै छी
से पूर्वग्रहहीन अछि
तीत अछि
सहज मुदा
अहाँ छी चोर
फुसियाह
दम्भी
आ व्यभिचारी
बस एतबा सहि लिय'
दिन केँ नहि तँ रातियो केँ
अन्हारहु मे कम सँ कम
जानि लिय' मानि लिय'
नहि तँ कहियो
कहि दै छी
उठि क' हम
ऊपर सँ ओढल एहि खोल केँ
अहूँक परदाकेँ फाड़ि देब
फाड़ि देब अपनहि संग।

रचनाकाल : 27 जून 1967

आत्महत्याक पूर्व

ई बहैत नदी
बोच-गोहिसँ भरल
ऐंठैल, नितराइत
हमरा आमंत्रित क' रहल अछि
उधिया रहलैक अछि
मारते रास मुइल लोकक लहाश
पेट फुलल, चित्त-पट्ट भेल
बहल जा रहलैक अछि
आ हमरा मरि जयबा लेल
बाध्य क' रहल अछि

कात महक पीपर केर गाछ
जकर फुनगी बड़ ऊँच छैक
पात ओकर रहि-रहि क'
क' रहल नचार
फ'ड़ नहि छै तैं की
पीपरक ई फुनगी
धारक कात जीवन्त मृत्युक
सोपान बनल ठाढ अछि
बहुत लोक एहि पर सँ
कूदिक' मरि गेल अछि
आत्महत्याक सबसँ ई
नीक छैक नुस्खा

बहुत गोटय टेबि-टेबि
फुनगी पर बैसल अछि
पीढी दर पीढीक यैह छैक परम्परा

धरती निर्वीर्य बनलि
जीवन अछि अनियंत्रित
सगरे अछि एक शब्द
महगी आ महगी
भूत वर्तमान दुनू
पीठ ठोकि बुझा रहल
मरबे अनिवार्य अछि।

रचनाकाल : 24 सितंबर 1967
आखर : फरवरी 1968

आत्महत्याक उपरान्त

एहिमास रेडियोग्राम
ओहि मास फ्रीज
नव-नव डिजाइन, स्टाइल
नव-नव छै फैशन
चारूकात एक पर एक
अन्तहीन तरंग
बेटा-बेटीक फीस खर्च
औषधि आ भाड़ा
मास दिन पर एकमेव
खाँटी दरमाहा
समुद्र केँ डोंगी सँ सहज छैक
एहि कुहेस मे पार करब?

तेँ हारि क'
कुशाग्र तीक्ष्ण
पिजायेल छूरीसँ
अपन आत्महत्या कर' पड़ल
अप्पन पुरना घेघकेँ
काटि-कूटि हटा देल

आ तकरा बाद सँ निश्चिन्त छी
कुर्सी पर बैसल
दहिना हाथें न्यायक पीठ पोछि

अपराधी केँ दैत छियैक मृत्युदंड
बाम हाथ निरन्तर हँसोथि रहल जीवन
भालसरीक फूल
(आजुक युग मे वामांगे अछि सुख)

सायंकाल क्लब मे
भद्रलोकक गोष्ठी मे
अपन मुइल आत्माकेँ
डाह' लेल फुकै जाइ छी आगि
हमहीं नहि
सबक्यो मिलि
भरिसक्के ककरो छगुन्ता लगैत छैक।

रचनाकाल : 24 सितंबर 1967
आखर : फरवरी 1968

(हमरा एकटा आदर्शवादी मित्रक एकटा पुत्र जखन हुनका न्याय विभाग मे नौकरी भेटल छलनि, आयल छल। प्रथम कविता 'आत्महत्याक पूर्व' तकरे अभिव्यक्ति थिक आ आब ओ ऊँच पद पर छथि। किछु दिनक बाद हाल मे हुनका सँ भेंट भेला पर जे गप्प भेल, तकर अभिव्यक्ति दोसर कविता 'आत्महत्याक उपरान्त' थिक। पत्र आ गप्प गुह्य थिक वैयक्तिक, मुदा व्यक्ति थिक सर्वज्ञात सार्वजनीन।)

एकः शब्दः...

सृष्टिक आदिकाल सँ आइधरि
वंशानुवंशक क्रम सँ
हमरालोकनि सम्मिलित रूपें
बाँझ शब्दक गाय केँ
चरबैत रहलहुँ
आ ओकरे पंचगव्य पीबि-पीबि
परिशुद्ध होमक अहंकार
उपलब्धि-भ्रममे भेगैत रहलहुँ
आरोपित सत्यक पाछाँ
एकटा विवश कुंठाक संग
अपूर्ण अर्थ-पथ पर दोगैत रहलहुँ
मरि गेलाह दिलीप
मरि गेलीह सुदक्षिणा निस्सन्तान
नन्दिनीक दूधक प्रतीक्षा मे

मुदा जाइ अकस्मात
भेटि गेल ओ शब्द
जकरा तकबा मे आइधरि
जंगल-पहाड़ मे
सागरक कछेर मे
द्यावा-पृथिवी मे
आ सार्थवाहक हेंड़ मे
बौआइत रहलहुँ अछि

औनाइत रहलहुँ अछि
यैह छल हमरालोकनिक एकमात्र नियति

मुदा आइ अकस्मात
भेटि गेल ओ शब्द
अभिव्यक्तिक बाद जकर
नहि रहतैक अवशेष
समाहित छैक जाहि मे
पात्र काल देश
अशेष अर्थवत्ता
निरवधि परिवेश
बीति गेल जकरा साधना मे
कोटि–कोटि अब्द
भेटि गेल अकस्मात
आइ ओ शब्द
थिक चिर शाश्वत नाद कामधेनु
'बैखरी' सँ 'परा' धरि
चेतनाक वेणु।

रचनाकाल : 28 सितंबर 1967
मिथिला मिहिर : 26 नवम्बर 1967

दू टा कविता

हमर श्रद्धा

सागर थिक रत्नाकर
अमित वारि-राशि
मेघ बरिसैत अछि
निर्झर झरैत अछि
नदी सब खसैत अछि
सागर भरैत अछि
लक्ष्मीक नैहर थिक
विष्णुक थिक सासुर
मुदा हमर समस्त श्रद्धा
अछि ओहि फुद्दी पर
जे अपना अंडाक चोर केँ
छोटकी चोंच सँ उपछि क'
सुखब' चाहैत अछि।

समाजवाद

तोड़ि दियौ प्राचीर
कि रस्ता चाकर हो
पहुँचय लोक अहाँ लग
रोधन हटा सकय
तोड़ि-ताड़ि वन
शिला
भगीरथ जगा दियौ
गंगा शिव-शिर उतरि
मही केँ पटा सकय।

मिथिला मिहिर : 01 अक्तूबर 1967

चारि टा छोट कविता

मन:स्थिति

ई निर्जन वन
एकपेरिया सन
शून्य बनल अछि
हमर जीवन
बाट बिसरिक'
भोतिआयल जनु
बौआ रहल एतय
व्याकुल मन।

बक बहय बसात

बुढ़बा अकास
मैल, चिक्कट, कारी-कारी
मेघक केथरी
खीचिक' शून्यक पोखरि मे
पसारि देलक सुखबालय
जकरा प्राची-प्रतीची दुनू बहीनि
पुरबाक झोंकी मे
हिला-हिलाक' सुखा रहलि अछि
दुनू छोड़ पकड़ि
बक बहय बसात
आ बुढ़बा उकासी करैत

ढेसैत अछि
रहि-रहिक' बलात

अकाल

बौआयल नीन मे
के कहलक बात
जे हम देखैत छी
स्वप्न साँझ-प्रात
महगी मे नहि रहलै
स्वप्नो धरि सस्त
व्यक्तित्वक खंडहर मे
जीवन अछि त्रस्त
ल' रहलै सत्य सँ
प्रत्यय प्रतिशोध
अर्थ केँ ने रहलै अछि
आइ शब्द-बोध।

निर्लज्जता

मुँह पर लगौने नकाब
घूमि रहल नि:संशय लोक
स्नो-पाउडर सँ अ'ढ़ क'
बिसरि गेल 'असलीयत'
सहज रूपें सभ केओ
एक-दोसरा केँ ठकैत अछि
मुदा आन नहि तँ
अपना छै बूझल सभ केँ
जन्मे सँ असंदिग्ध
अपन कुरूपता।

मिथिला मिहिर : 01 अक्तूबर 1967

खुटेसल

हमरालोकनि बान्हल छी
हमरा सभ केँ अतीत 'हरी' मे ठोकने अछि
हजार-हजार वर्ष बितलाक बादो
हमरा सभ निरंतर चलैत
ओहीठाम ठाढ़ छी
हमरा लोकनिक अगिला पड़ाव
भरि दिन चललाक बाद
साँझ मे
पुनः ओहीठाम होइत अछि
जत' भोरखन उठल छलहुँ

कोल्हूक बड़द जकाँ
हम सभ समन्वयवादी छी
लड़बाक अपेक्षें हमरा सभ
बचि जएबाक बाट बनबैत छी
जीवन भरि अतीतक पाउजे करैत छी
हमरा लोकनि
बापक बाप आ तकरा बापक बाप
माने संख्यातीत बापक परम्परा मे
जीबैत छी

एकटा दुर्निवार माया
सौंसे देश केँ

अपना आँचर तर झपने अछि
तें हाँजक हाँज लहाशक संग रहबा मे
गौरव-बोध होइत अछि
लहाश सभक अनेक अक्षौहिणी
हमरा सभक माथ मे प्रेतनृत्य क' रहल अछि
अपना हथियार सँ 'हैण्डस-अप' करौने अछि

समस्त वर्त्तमान आ भविष्य केँ
एकटा अजोध अजगर दकचने अछि
अपन चोख बिखाह दाँत
हमरा लोकनिक पीठ मे भोंकने अछि
हमरालोकनि बान्हल छी
हमरा सभकेँ अतीत 'हरी' मे ठोकने अछि।

रचनाकाल : 2 जनवरी 1968
मिथिला मिहिर : 18 फरवरी 1968

अनुत्तरित

प्रत्यह भोरमे उठला पर
हम अपना कान्ह पर
एकटा जहाजक बोझ उठौने
अंगैठी मोड़ आ हाफी करैत छी
योजनाक पहेली केँ जुगताक' भरैत छी

सुरूजक चक्का देखिते
मदारीक बानर भ'
डमरूक बोल पर नाच' लगैत छी
जखने जगैत छी
सहसा मनुक्ख सँ गदहा बड़द बनि
राति धरि अनेक खेप जनमैत-मरैत छी
सभ किछु करैत छी

प्रत्यह 'क्षण'क बड़का जुलूस
नाम सभक नारा लगा
सड़क सभ टपैत अछि
हमर कनहा कँपैत अछि।
हमरा खोलसँ बेसीकाल
एकटा कुकूर बहराक'
रोटी आ नूआ लग नाङरि हिलबैत अछि
ओकर छद्म व्यक्तित्व सदिखन
हँ मे हँ मिलबैत अछि

सभ प्रश्नक सामूहिक उत्तर भेटैत अछि
...ई सभटा करैत छी हम केवल जीबा लेल।
जीबैत छी कथी लेल?...
अनुत्तरित प्रश्न अछि!

रचनाकाल : 5 जनवरी 1968
मिथिला मिहिर : 14 अप्रील 1968

जय-लिप्सा

आइ हमरा व्यक्तिक आदिम पुरुष
अपन समग्र विराटत्वक ऊर्जा संग
कोनो क्षीर-सागर सँ उत्थित भ'
योगनिद्रां परित्यज्य
कोना अतिवीर्य मधु सँ
दुर्दान्त कैटभ सँ
(एब्नार्मल एसिडीटी आ दुर्दमनीय दर्दसँ)
बाहु-युद्ध लेल प्रस्तुत भेल अछि
ओना युद्ध तँ करिते आयल अछि
पंच-वर्ष-सहस्त्राणि
बरियातूक ई भूमि, राँचीक महाकाश
जेना एहि पद्मनाभक रणांगण थिक।

ई समस्त राजेन्द्र मेडिकल कालेज हॉस्पिटल
एकर सभटा विंग,
सभटा तलातल, सभटा ब्लॉक
सभटा वार्ड आ सभटा बेड
ई टांग कटल, देह टंगल, हाथ बान्हल
पेट चीरल, माथ सील, रुग्ण स्त्री-पुरुष
ऊपर नीचा भेल
शत-शत रूप-विरूप रोगीक युयुत्सा
श्वेतवसना कादम्बरी-समूह
हेलैत तरणीक श्वेत पाल

अच्छोद सरोवरक ईथर गंध
चिकित्सक आ उपचिकित्सक हेंज
चीर-फाड़, काट-कूटक
समस्त ऑपरेशनक यंत्र संहति
एपेन्डिसाइटिस, गॉल ब्लाडर
ड्यूओडिनल गैस्ट्रिक आ पेपटिक अलसर
नाना प्रकारक रोग आ सभटा चिकित्सा
सभटा हमरा ओहि आदिम मे समाहित अछि।

आ हमर एकटा दोसर दुर्बल व्यक्ति
एहि सभ सँ तटस्थ
एहि सभ सँ आतंकित
बैसल अछि अपन बेरियम मिल्क एक्सरे
आ गैसट्रिक एनालसिसक प्रतीक्षा मे
अदृश्य मे कोनो महाचिकित्सक
हँसि रहल छैक एकरा प्रतीक्षा पर
एकरा जिजीविषापर, एकरा संत्रासपर
मुदा हमरा ओहि आदिम लेल धनसन।

ओ क' रहल अछि आदि सँ एखन धरिक
गणित
जोड़, घटाव, गुणा आ भागक
अद्यतन हिसाब
उनटा रहल अछि तन्मय भेल अपन लेजर
'जोड़' पर मोन पड़ैत छैक
अनेकानेक संज्ञा
ईप्सित-अनीप्सित लोक-समुदाय
बढ़ैत गेल कालक गति पर महत्तम संख्या
एहि मे सँ जे घटाव भेल से छाँटि रहल अछि
जे रहल शेष तकर लेखा क' रहल अछि

की भेटलैक प्रिय, की अप्रिय
कतेक दूर, कतेक अंश? से नहि फड़िछाइत छैक

आ गुणा?
ओ फूसि नहि कहत
ओकरा मोन पड़ैत छैक गणितक आदि पुरुष
गृत्समद
ओ ऋषि गृत्समद जे संख्याक प्रथम प्रयोग
सहस्राक्ष इन्द्रक आवाहन मे कयने छल
ओहि गृत्समद केँ साक्षी राखि
फूसि नहि बाजत ओ
गुणा केवल बूझल छैक गणितक एक विधि रूप
आइधरि गुणा नहि भेल छैक शिव मे
आ शिवक पृष्ठ निःसंशय गुणा सँ भरल छैक
भाग सीखि रखने अछि
अजमौलक नहि अछि
एकरा लेल ओ एखन आरो जीब' चाहैत अछि
अनागतक आशा मे भोगि रहल वर्त्तमान
युद्ध-जर्जर जीवन मे जीवित छै मधु-कैटभ
मुदा एकरा हाथ मे छै शंख चक्र गदा पद्म
शतदल पर मुस्कुराइत जयलक्ष्मी संग छैक।

मिथिला मिहिर : 30 जून 1968

एकटा सामयिक कविता

बरिसू
जतेक बरिसबाक अछि बरसि लिय'
हे विरहातप द्रवित भावनाक मेघ
हे एहि कांके-राँचीक बादरि
छोटानागपुरक ई आदिम पावस
बरिसू जतेक बरिसबाक अछि
हमर धोती, हमर कुरता, हमर गंजी
हमर माथ, कान्ह, देह
पिपनी आ आँखि, भौंहुक ई रेह
ई घर, ई आँगन-बगान
ई रुच्छ-छुच्छ उसराहा मैदान
सबकिछु एहि रिमझिम मे डूबि जायत
मानैत छी

मुदा हमरा मोन केँ किन्नहुँ नहि भिजा सकब
भीजि जँ जयबो करत तँ
अहाँक एहि क्षणिक बरखा-बुन्नी मे
डूबत धरि किन्नहुँ नहि
थाल-माटि घोल एहि उजरा पाथर सन
मोनक स्मृति एहि टघार सँ
आरो जगजगार भ'
साफ-स्वच्छ भ' चमक' लागत
सोझाँक मैदान महक

जरल–डहल दूभि जकाँ
कुमारिक पवित्रता सन
तन्नुक
मृदु
अंकुर जकाँ
हरियर भ' पसरि जायत
सौंसे मोनक दग्ध माटि पर

ओ की आरोपित ढेप थिक
जे अहाँक अछार सँ
गलि क' बिला जायत?
मुदा कतहु हम टूटि जायब
पराजित आ आई भेल
अहँक विजय मानि लेब।

मिथिला मिहिर : 08 सितंबर 1968

एकटा प्रत्याख्यान

हे बंधु
अहाँ अपना केँ की बुझैत छी?
(आक्रोश नहि, ईर्ष्यामर्ष नहि
अपमान नहि, हीनता-बोध नहि)
जँ साँच गप्प कहि दी
तँ अहाँ अपना केँ सव्यसाची अर्जुन बुझैत छी
महाभारत विजेता, पुरुषार्थी, महापुरुष
मुदा बुझा दी ओकर यथार्थ स्वरूप?

ओ केवल निमित्त मात्र छल
स्वतंत्र व्यक्ति नहि छल
कोनो कुरुक्षेत्रक एकटा माध्यम
कोनो महाभारतक एकटा संज्ञा
ओकर अप्पन किछु नहि छलैक
जीवनक समस्त साधना आ उपलब्धि
ककरो इंगितक अधीन (परतंत्र) छलैक
गाण्डीव छलै ककरो दान
से जखनहि ओ बुझने छल
तखनहि अपना आत्मबोधक होइतहि
अपना सारथिक सोझँहि मे
बीचे कुरुक्षेत्रमे
युद्धारम्भक पहिनहि
हड़बड़ा क' फेकि देने छल

ओकर रथ अपन नहि छलैक
ओ छलैक ओकर सारथिक

जे सारथिक इच्छा सँ चलैत छलैक
कहियो ओकरा मोन सँ रथ नहि चललैक
ओकर पौरुष छल आरोपित
ओकर विज्ञान छलैक दोलेबल
गीता सँ ओहि मे सोंगर लगौल छलैक
युद्धक सबटा क्रिया-प्रतिक्रिया
ओ अपने नहि
अनका संकेत पर करैत छलै
दहिना हाथें हो कि बामा हाथें
ओकर सव्यसाचित्व छलैक परतारब
एकटा प्रलोभन
फुलयबाक विशेषण
नहि तँ द्रौपदी
जकरा ओ एकसरे स्वयंवरे मे जितने छल
ओकरे टा नहि
आनो चारि पुरुषक भोग्या स्त्री होइतैक?
की ओकर आत्मज अभिमन्यु
ओना चक्रव्यूह मे असहाय मारल जइतैक?
की ओ अपने सहोदर कर्णक
जानी दुश्मन होइत?
से हे फूसि भ्रम मे पड़ल बंधु
ने ओकर संकल्प अपन छलैक ने विकल्प
ने ओकर युद्ध अपन छैक ने पराक्रम
ने ओकर विजय अपन छलैक ने पुरुषार्थ
ने ओकर फल अपन छैक ने फलभोग
ने ओकर माय छलैक अपन
ने ओकर बाप छलैक अपन
तैं ने अंत मे एही महाग्लानि सँ
हिमालयक बर्फ मे चुपचाप
गलि गेल...गलि गेल।

मिथिला मिहिर : 13 अक्तूबर 1968

स्मृति-विश्लेषण

टाबरक घड़ी
अपना दुनू हाथें
परसि रहल अछि
समयकेँ बुट्टी-बुट्टी काटि क'।
हमरालोकनि अपन-अपन हिस्सा
जुगता क' राखि लैत छी
बासि आ तेबासि।
संग्रह आगाँ लेल
आदिम प्रवृत्ति थिक।
पाउजि करब ककरो-ककरो
बड्ड नीक बुझाइत छैक
मुदा बेसी गोटय
विवश...
रद्दे क' दैत अछि।

रचनाकाल : 01 दिसम्बर 1968

कविताक विद्रोह

नहि रहब, नहि रहब
आब अहाँक बन्धमे
परम्पराक फन्द मे
मुखापेक्ष छन्द मे
नहि रहब, नहि रहब।

गीत आ भजनक रमनामा ओढ़ौने
की हम एकतारा ल'
संन्यासिनिये रहब जीवन भरि?
अबला, पराश्रिता...??
बुर्का पहिरा क' 'हरम' मे बन्न कयने
की हैत?

चानक खोल
अहाँक बोल
आब हमरा नहि सोहाइत अछि
झाँपने रहू प्राण हमर
कीया मे अहाँ लोकनि
मुदा अमरलत्ती आब
गाछे-गाछ पसरत
ज'ड़ि दिस ससरत।

रचनाकाल : 01 दिसंबर 1968

आत्मकथ्य

सूति क' उठितहि
हम शपथ खयने छलहुँ
जे आइ दिन भरि
कतहु ने जायब
पैर नहि उठायब
ने बाजब
ने भूकब
ने कोनो संदर्भक आगि मे
अतीत केँ धूकब
ने अन्हारक आमंत्रण
ने प्रकाशक यंत्रणा
अपना मौलिक एकाकीपन सँ
किन्नहु ने चूकब
बाजब ने भूकब

मुदा साँझ होइत सबटा बिसरि गेल
हमर निर्णय मरि गेल
जुलूसक अबितहि
चुपचाप कुरता पहीरि
चप्पल सरियबैत
भीड़ मे मिझरा गेलहुँ।

रचनाकाल : 01 दिसंबर 1968
(स्मृति विश्लेषण, कविताक विद्रोह आ आत्मकथ्य—
त्रिवृत्त नामे मिथिला मिहिर दिसंबर 1968 मे प्रकाशित)

' '

विश्लेषण

ई नवीन स्वर
छै जकरा सोझाँ मे
जटिल यथार्थ द्वारा प्रस्तुत
प्रश्नक पथार
कोना द' सकत कोनो निश्चित उत्तर
एक्के टा निर्णयक असंदिग्ध धरातल!
जकरा छै बूझल
घोषणाक दस्तावेज जाली भ' गेल
शांति
प्रेम
समाजवाद
लोकतंत्र
मुक्तिनाद
एहन-एहन शब्दक गोली खाली भ' गेल
फूसि थिक कारखाना मे बनल समाधान
रूढ़िग्रस्त दुरभिसंधिक
मूइल मूल्यवान
कोकनल घुनलग्गू छै पुरना प्रमाण
युग तँ कैइये रहल
नव-मूल्यक अनुसंधान।

ई नवीन स्वर
छै जकरा आगाँ मे
वृद्ध, जर्जर, क्लीव-युगक

नपुंसक आक्रोश
दिशाहीन विकृति
नियोजित विरोध
विधवा मान्यताक
आ सड़ल-गलल आदर्शक
कुत्सित, अस्वस्थ, द्रोह
सौंसे परिवेश मे उच्छृंखल क्रोध
विसंगति अबोध
मुदा आब जनमतैक
ज्योतिजनक पौरुष केर दायित्व-बोध।

ई नवीन स्वर
जकरा नहि स्वीकृत छै अन्हारक बन्धन
बन्हकी नहि राखल छै कतहु अपन मन
प्राप्त छैक जकरा स्वाधीन, मुक्त, क्षण
नग्न वर्तमान केर समग्र संवेदन
आधुनिक संचेतनाक अंत: स्पंदन
देश सँ, समाज सँ
जीवनक यथार्थ सँ
ई अछि प्रतिबद्ध
अपना अस्मिता सँ शत-शत संपृक्त
प्रत्येक समस्या सँ लड़बा लेल सक्रिय
निर्भय, सन्नद्ध

रचनाकाल : 06 दिसंबर 1968
मिथिला मिहिर : 09 फरवरी 1969

निर्वासित अपने देश मे

(जाति आ राजनीति तँ आजुक जीवन केँ घेरने आ कसने जा रहल अछि आ निखालिस व्यक्ति चीत्कार क' रहल अछि...)

हम यैह छी एत्त'
ओमहर कत्त' तकइ छी?
हम छी असुरक्षित
उपेक्षित जगह मे
अहाँक दृष्टि तँ ओझरायल अछि
बाभन, कायस्थ, क्षत्रिय, भूमिहार
आ यादवक छहरदेवाली मे

मुदा हम छी एत्त'
छहरदेवाली सभ सँ फराक
हास्यास्पद
द्वेषपात्र
अनफिट
मनुष्यमात्र
कहि नहि कक्खन के
हत्या क' देत!
नोचि क' खा लेत!

हम छी एकसरे
भीड़ सँ पृथक

पछुआएल तिरस्कृत
आ अहाँ केँ भीड़ चाही
देश-सेवा लेल एकटा पार्टी चाही

हम छी स्वतंत्र
अहाँ केँ कोनो तंत्र चाही
नारा चाही, मंत्र चाही
अहाँ केँ चाही अप्पन कोनो वाद
कोनो परिवेश
हे भगवान,
हमर तखन थीक कोन देश?

रचनाकाल : 7 दिसंबर 1968
सोनामाटि : फरवरी 1969

एकटा कसबानुमा गाम

नीक लगैछ हमरा अप्पन ई गाम
अदहा-छिदहा शहरक देहातक ई फेंट
कसबानुमा गाम
हमर चिक्कन चुनमुन गाम

जत' विदेशी आयात आ देशी निर्यात
होइत अछि संगहि संग दुहू केर बात
जत' सिम्मरि आ पलासक टटका फूल
मुनिगा आ कचनारक सौरभ
पीपर आ शिरीसक छाहरि
मनीप्लांट कैक्टसक छवि संग भेटैत अछि

जत' चौकपर यातायात नियंत्रणक पुलिस
आ प्रत्येक चौक पर मंदिर
मंदिर सभ मे हनुमानजी
वा शिवलिंग कि राम जानकीक प्रतिमा
सिनेमाक तर्ज पर झमटगर भजन
लाउडस्पीकर पर होइत रहैछ
जत' अष्टयाम
नीक लगैछ हमरा ई कसबानुमा गाम

जत' डीहवारक थान पर 'भाओ'
आ होइत अछि
धात्री केर गाछतर भोज
ग्राम्य-संस्कृति आ नगर-बोधक
होइछ जत' खोज
दरबज्जापर सत्यनारायणक कथा
आँगन मे सामा-चकेवा
बेडरूम मे जॉजक लयपर
ट्विस्टक सिसकारी
एक्के ठाम फड़ैत अछि
तिलकोड़, खम्हारु आ महकारी

जत' सिनेमाक पोस्टरक उत्तेजक अश्लीलता
ड्रेन पाइप पैंट पहिरने 'हीरो' सभक दल
करैत अछि नित नवीन पेरिसक नकल
जत' सेफटिक शौचालय
आ बसबाड़िक अ'ढ़ मे
शौचमुक्त होइछ लोक जंगल मे, ख'ढ़ मे
टेलीफोन, बिजली आ पीचरोडक संग-संग
गरदा भरल सड़कक जत' दुहू कात
सड़ैत रहैछ मलमूत्रक दूषित बसात

जत' अल्ट्रामाडर्न ड्रेसवाली
अनेको धी-पुतोहु
पीपर मे पानि ढारि सैकेन्ड शो सिनेमा जाइछ
रिक्शा, बस, जीप, कार
मोटर साइकिलक कोलाहल मे
योगासन-प्राणायाम

ध्यान-धारणाक क्लास होइछ
रामनामा चादरि ओढ़ने साहुजीक
बेटा चलबैछ विलायती शराबक दोकान
दोसर कात अहिंसक मधु बिकैछ

जत' कॉफीक टेबुलपर होइछ
परम्पराक विद्रोह
नैतिक मानक अनास्था
निराशा, कुंठा, अवसाद, संत्रासपर
साहित्यिक, राजनीतिक चर्चा
जत' राजकमल चौधरी, यात्री
आ सुमन अमर राघवाचार्यक
समान सम्मान होइत अछि
जत' 'जय जवान जय किसान'
आ 'खंडित समन्वय' दुहू लिखल जाइछ

जत' पाउडर मिश्रित फोंकलाहा
गहूमक सरकारी दोकानपर
दोकानदारक मुँह चटैछ राजनीतिक कार्यकर्त्ता
पाँच सय ग्राम चीनी
आ साढ़े तीन गोट टाका लेल
जे एकटा पायजामा सियाक'
एक कप चाह आ दू खिल्ली पान खाक'
इन्दिरा, अयूब सँ ल' क'
माओत्सेतुंग, निक्सन धरिक
चीर-फाड़ करबा मे माहिर अछि

जत' अन्हारक आतंक
बैसल-बैसल मोंछ पिजबैछ
आ इजोतक पातर-छितर
पियराएल किरण सभ
सोंगर लगौल, भखरलहा घरक
चिनुआर पर
चुपचाप लड़ैत अछि देशक भविष्य सँ
अर्द्ध-गौर, अर्द्ध-श्याम, हम्मर ई गाम
नीक लगैछ हमरा ई कसबानुमा गाम।

रचनाकाल : 31 मार्च 1969
सोनामाटि : 1970

अ विरोध

कोनो फूल, कोनो निर्झर
कोनो वन्याक गीत
जे गबै छथि
तनिका सँ हमरा कोनो विरोध कहाँ अछि?

मुदा पुरना प्रतीक आ संदर्भ
जनिक कल्पनाक विषय थिक
अज्ञान वा आज्ञान
दोहरबैत रहब जनिक रचना थिक
ओहि मे कोनो शोध कहाँ अछि?

गतिमान इतिहास, धन्न रहू
पुरना उच्चैः श्रवा पर चढ़ब अहाँ केँ पसिन्न अछि
हमरा अहाँ सँ कोनो प्रतिशोध कहाँ अछि
विरोध कहाँ अछि?

किन्तु
कनरसियाक साधुवाद सँ गर्वित
मंचाधीशी काव्यक
पराजित स्वर छोड़ि
दोसर की संज्ञा छैक?
आ जँ केओ परंपराक जंगल तोड़ि
नबका फसिल केँ पटबैत अछि

तँ अहाँक माथ मे दर्द कियैक होइछ?

आजुक युग-सत्य सँ परिचय करू हे गीत-बंधु,
कनेक जीवनक यथार्थ केँ बुझू
चीन्हू—
ई कुंठित
ओझराएल,
संत्रस्त श्वास
अहाँक थिक आ कि नहि?

रचनाकाल : 25 अप्रील 1969

परिचय-अपरिचय

अहाँ के छी से हम की जान' गेलहुँ
कोना दिय' अहाँक परिचय
परिचयक ठेकान
आ तकर आश्वस्ति
जखन हम अपना केँ नहि चिन्हैत छी
जे, हम के छी?

ओना हम चालीस बर्ख सँ बेसी भेल
अपना संगे रहैत छी
सदति नहि तँ प्राय: प्रतिदिन
किछु काल केँ अवश्य
आ एतबा जनैत छी जे
हमरा भीतर मे हेरायल
एकटा व्यक्ति अछि

निरभ्र व्योम मे बिजली चमकैत अछि
आ कखनो केँ बुझाइत अछि
कुम्ही सँ छाड़ल पोखरिक पानि
तरे-तर औनाइत अछि

जहिया बासन्ती बसातक झोंक
वा चैत्रक्षपाक आवेश मे
हमर कोनो मित्र अपन कोनो प्रेमकथाक

कोनो रोमांसक
वर्णन कर' लगैत छथि
तँ हम तटस्थ भेल, अपना खोल मे
ढुकि जाइत छी

जत' हम रहै छी आ हमर ओ भावुक व्यक्ति
बस केवल तखने टा
हम निरावरण भ'
ओकरा सँ तादात्म्य भ' जाइत छी
ओकरा जनैत छी।

खोल तँ अहूँ केँ अछि
मुदा की अहूँक भीतर कोनो व्यक्ति अछि?
की अहूँ केँ ओ बुझाइत अछि?

रचनाकाल : 29 अप्रील 1969

आवृत्ति...आवृत्ति

एतेकरास फालतू शब्द
जकरा सभक अर्थ
कोनो घसल-टूटल शिलालेख जकाँ अस्पष्ट अछि
हमरा ओ शब्दकोश नहि दिय'
एहि पूँजी पर केवल धोखाक दोकान चलि सकैछ
की होयतैक अभिव्यक्ति-वंचना ल' क'
वायुमंडल वितानक कारणे
समस्त सौर-विकिरणक शतांशो पृथ्वी केँ प्राप्त होइछ

ई फूसि शब्दजाल
कथ्यक ऊर्जा केँ निष्प्रभ क' दैछ
हारिक' लोक अनागतक कूप मे
अपना मुँहक प्रतिबिम्ब ताक' लगैछ

विवश आत्मसन्तुष्टिक प्रतीक्षा मे तल्लीन
वर्त्तमान एकटा सड़ल घाव थिक
रहि-रहिक' नष्ट पीज टीस मारैत अछि
अतीत कोनो झमटगर गाछक छाहरि नहि
हम अपन समस्त समय सर्वस्व
शून्यक अनन्तता केँ समर्पित क' देने छी।

नहि देखैत छी हम अपना गामक भग्नावशेषो
नहि पबैत छी अपना घर धरि पहुँचबाक बाट

की करब हम ओ शब्दकोश ल' क'
जाहि मे केवल अर्थहीन शब्द सभक संग्रह अछि।
जकरा बलपर हम कतहु नहि जा सकैत छी
होइत रहलैक अछि केवल
आवृत्ति....
आवृत्ति....
आवृत्ति....!

रचनाकाल : 3 मइ 1969

एकटा भावुक क्षण आ एकटा यथार्थ

हे विस्मृते,
अकस्मात आइ आँगनक कोलाहल मे
भ' रहल अहाँक पूर्वस्मरण
कैशोर्यक ओ स्मृति मुदा
अपनहि विद्रूप लगैछ
आजुक सन्दर्भ मे।

बितलाहा प्रत्येक दिन
अहाँक सुन्दर मुँहपर
घीचिक' बहुत रास कुटिल रेख
बना देने अछि बहुत गहींर
हमरा मुँहपर समयक ततेक डाँरि अछि
जे डाँरिक अतिरिक आर किछु नहि भेटत आब
तथापि बहुत दिनक बाद
ई रेखा, ई डाँरि
थरथरा क' काँपि उठल

बरखा मे भीजल कोनो चिड़इ
पाँखि फड़फड़ा रहल अछि
आ पानिक बुन्न जकाँ
बितलाहा एक-एक क्षण
हमरा सँ झरि-झरि क' खसि रहल अछि
आ हल्लुक भेल जा रहल छी हम

अहाँक रूप
कोनो चमत्कार सँ पूर्ववत्
एनमेन पूर्ववत् भेल जा रहल अछि
हम अहाँक हाथ केँ छूब' चाहैत छी
अहाँक केश केँ सरिअबैत
अहाँक माथ केँ पोछि
आश्वस्त होम' चाहैत छी
हमरा कामनाक च्यवन
समयक दिबड़ाक भींड़ सँ बहरा रहल अछि
आ ताकि रहल अछि सुकन्या केँ
वर्त्तमानक ई अश्विनी कुमार
की हमर बाधक भ' जाएत?
नहि, नहि।

आइयो हमरा मे बहुत किछु सुरक्षित अछि
नहि रोकि सकत हमरा शर्यातिक विवेक
हम जनै छी जे ओहि सुरक्षित केँ
फेर शुरू सँ ताक' पड़त
अंधकारक असंख्य स्तरक भीतर
अवश्य अछि कतहु एकटा इजोत
मुदा ततेक दूर चलि आएल छी
आयुक गुफा मे
जे थरथरा रहल अछि विश्वास
मुदा जीवित अछि अंकुर
मूइल नहि अछि से भरोस अछि
जँ प्रथमोदयक ओहि पल सँ
आइधरिक व्यतीत क्षणक शिलाखंड केँ
हटा दी हम-अहाँ तोड़ि क'
तँ भरिसक अवश्य
एहि बीहड़ जंगलक ओहि पार
पहुँचि सकैत छी इजोतक झरना धरि

आउ, अहाँ संग दिअ'
ई किला नहि टघरत एकसरे

किन्तु एहि प्रयासक अछैत
सत्यताक यथार्थ स्वीकृति
एकटा सर्वग्रासी यंत्रणाक लाठी सँ
हमर कपार फोड़ि दैछ
आ हम फेर अपना भीतर मे यात्रा कर' लगैत छी
जाहि मे अनेक मरुभूमि
अनेक ध्वंस
टूटल-छिड़िआयल इच्छाक ढेरी
बहुतरास अस्वीकृतिक कंकाल
अपरिचित-अयाचित स्नेह-स्पर्श
बबूरक काँट, अमलतासक फूल
बहुत किछु असह्य
बहुत किछु काम्य अछि

आगाँ मे लहरा रहल समयक समुद्र
भसिया रहल स्मृतिक नाह
क्षणक तरंग पर दिशाहीन
हपसि रहल अछि कछेर मे बैसल
एकटा भूखल, तृष्णाकुल
असोथकित, जर्जर
कालाहत
असमर्थ पशु।

रचनाकाल : 9 मइ 1969

किछु परिभाषा

जीवन

एकटा अपरूप शक्ति
जकरा अयला पर उत्सव-समारोह
चलि गेने सभ छाती पीट' लगैछ
आ रहला पर विवशताक वेदना
एकटा निर्मोही अतिथि

भूख

एकटा आदिम युगक अशरीरी दैत्य
जे समस्त भू-मंडल मे व्याप्त अछि
जँ चेतनाक गति थिक
तँ असमाहित समस्या
समुद्र मंथनक अमृत पीबि ई राक्षस
अजर-अमर सार्वभौम
सभ केँ व्याकुल बनौने अछि
कुरूप, अश्लील, भयंकर, असंतुष्ट

प्रेम

एकटा अभीप्सित व्यापार
कोनो सुन्दर देवताक वरदान
जकरा नाम पर होइत आयल अछि
ऐतिहासिक निर्माण
प्रलयंकर ध्वंस
पयबा लेल सभ रहैछ अपस्याँत
पाबिक' भ' जाइछ सभ
असंतुलित, असम्हार

दम्पत्ति

एक जोड़ चिड़ै
विभिन्न दिशा सँ आबि
कोनो गाछक ठाढ़ि पर
बड़े यत्न सँ खोता सजबैछ
बिहाड़ि-पानि सँ आशंकित
बानर-बिलाड़ि सँ आतंकित
पाँखि मे दायित्व
आँखि मे छै कल्पना
चोंच मे दाना, मोन मे अनुराग
धनसन जँ छपकल छै
कतहु कोनो नाग

मृत्यु

एकटा शांतिदायक सत्य
जे चिरैता जकाँ तीत बुझाइछ,
क्यो पीबय नहि चाहैत अछि
पीब' पड़ैछ सभ केँ मुदा
सभ यंत्रणाक, सभ बीमारीक
एकमात्र महौषधि
सभक परम मित्र
कहि नहि कखन, कतय
ककरा भेटि जयतैक।

रचनाकाल : 6 जून 1969
मिथिला मिहिर : 3 अगस्त 1969

प्रतिवादक स्वर

हमरा नहि नीक लगैछ
अहाँक उपदेश
जे बाउ धैर्य राखू
सन्तोष करू।

हम खोखरि देम' चाहै छी
अहाँ लोकनिक खोल
खाहे लहु-लहुआन भ' जाय
हमर सौंसे देह।

हम देख' चाहै छी
अहाँक नग्न प्लास्टिक पिरामिड रूप
जे चाटुकार इतिहास द्वारा
बलात् हमरा पीढ़ीक माथपर
लादि देल गेल अछि।

हम जनै छी जे
अहाँक सभ्यता, संस्कृति
प्रगति आ सुख-सुविधा आदि
फूसि इन्द्रधनुषी
शब्द सभक जाल मे
बझयबाक सामर्थ्य आब
खतम भ' गेल अछि

मुइल अछि
गन्हायल अछि
अहाँक सकल शब्द-कीट।

हम तोड़ि देम' चाहैत छी
अहाँक समस्त अधिष्ठित बिम्ब
जे हमरा लोकनिक चारूकात
एक-एकटा उँचका सिंहासन
गाड़ि देने अछि।

समवेत अछि ओ बल
आइ हमरा बाँहि मे
जे माथपरक आकाश मे
अनका भरोसें चमकैत चन्द्रमा केँ
अपना मुक्का सँ
तोड़ि क' थकचुन्ना-थकचुन्ना क' दी।

तेज ग्रहण क'
धरती परक माटि-पानि सँ
लोक-नायक बनल सूर्यक
तेजोमय प्रकाश-पिण्ड केँ
घीचि क' धरती पर पटकि दी
आ एँड़ी सँ मीड़ि केँ
रित्ती-छित्ती क' दी।

कहिया धरि ई पीढ़ी
अहाँक गोली खाक'
आधि-व्याधि केँ देह मे झँपने जायत
कबरक लहाश मे की
नहि करैत छैक पिल्लू खद-खद?

हम नहि होम' देब
एहि समस्त संसार केँ
पागलखाना बनयबाक
दुरभिसन्धि केँ सफल।

नहि चाही हमरा
हफीमी निन्दक अमृत
मर्फियाक शांति
फुसियाहा स्वप्न-लोक
कर्जखोर आश्वासन
बनावटी इजोत
आ बनावटी बसात
नहि चाही हमरा
कोनो बनावटी बात।

रचनाकाल : 5 जुलाइ 1969
मिथिला मिहिर : 19 अक्तूबर 1969

पीढ़ीक शीतयुद्ध

कहियो जे बड़े उत्साह सँ
गरदनि मे झुलैत छलैक
आइ ओ दुर्वह भार बनि गेलैक अछि
एक सय आठ नहि
तीन सय पैंसठि दानाक माला
एक-एकटा दाना
विषधर साँप थिकैक
जकर विष सौंसे अस्मिता केँ स्याह क' देलकैक अछि
जकरा धाहसँ खकस्याह भ' गेलैक अछि
एहि पीढ़ीक समस्त आकांक्षा

आशाक सूर्य शिथिल भ'
करिया समुद्र मे डूबि गेलैक अछि
आ तखन बहरयलैक अछि एकटा दर्शन
देहक राजनीति
ब्लैकमेलक यन्त्र
आत्माक शवयात्रा
आ खोल बदलबाक पद्धति
बदलि देलकैक अछि कैलेंडर जकाँ
पछिला सिद्धांत
बना देलकैक अछि
बुद्धक पितरिया प्रतिमा
चिनिया माटिक गांधी

मोमक ईसामसीह केँ
सजावटिक उपादान

गीता, कुरान, बाइबिल
सभ 'फ्यूज्ड बल्ब' जकाँ
एकटा मकड़ाक जाल लागल कोन मे
पड़ल-पड़ल हिचकैत छैक
उपेक्षाक धूलि छैक छाती पर आरूढ़
ई समस्त पीढ़ी ताकि रहल अछि
विषक पुड़िया
छतक कड़ी मे बान्ह' लेल तौनी
तिनमहलाक छत पर सँ
कुदबाक सुविधा

आ एम्हर मनाओल जा रहलैक अछि
गांधीजीक संवत्सरी
सर्वोदयक मेला
खद्धरक प्रदर्शनी
बड़े धूमधाम सँ अहिंसाक जयन्ती
जय भारत! जय विश्व!!

रचनाकाल : 2 सितम्बर 1969
मिथिला मिहिर : 25 जनवरी 1970

अव्यक्त प्रणय

अहाँ छी
आ
हम छी
ई 'आ' जँ हटा दी तँ
केवल अहाँ-हम छी!
शेष भीड़
सौंसे नगर
बोटेनिकल गार्डेन थिक।

अहाँ-हमक बीच मे
छोटका सन 'हाइफन' अछि
मने एकटा नि:शब्द
अनस्तित्व
छोट-छीन चुप्पी
तें भरिसक अहूँ चुप छी
आ हमहूँ चुप छी।

मने बाजब तँ बीच मे
एकटा व्यवधान भ' जायत
शब्दक वा स्वरमात्रक
अतिरिक्त अस्तित्व

तें सरिपहुँ आइधरि
अहाँ केँ ने टोकलहुँ हम
चुप्प छी–चुप्प छी
हाइफनक हटि जयबाक
आकुल प्रतीक्षा अछि।

रचनाकाल : 21 सितम्बर 1969

कालजयी

युग-युग सँ रने-बने बौआइत रहलाक पछाति
आइ क्षणक सव्यसाची
अपना गाण्डीव केँ चिन्हलक अछि
तें क' रहल वेग सँ तैयारी लड़ाइक

छीनि लेत मल्कियत भाइक
लाक्षागृहक निर्बलता केँ
अपने सँ डाहि देत
बल-पौरुष थाहि लेत

बिनु कृष्णे रथ नहि चलतैक
तँ नहि चलओ
रथ-विहीन युद्ध करत
दुश्मन केँ मारत वा स्वयं मरत

की करओ बेचारा
एकदम निरुपाय अछि
पूरा असहाय अछि
धर्मराज दुर्योधन
सभक निपात होयत
जीवित रहत आत्मा टा
अन्त यैह बात होयत

महाभारतक भीष्म रहत
शय्याश्रित विश्राम मे
उत्तरायणक प्रतीक्षा नहि
शांति-स्थापनाक दायित्व ल'
समर शेष रहि जायत
कालजयी भीष्म मात्र
बाण-बिद्ध शुद्ध गात्र
मनुष्यक अदम्य जिजीविषा

रचनाकाल : 25 जुलाइ 1969
मिथिला मिहिर : 27 सितम्बर 1970
(अपना भावी ऑपरेशनक संदर्भ मे कांके, रांची मे लिखल)

पाँच फाँक

एक

एकटा गाछ
एकटा फूल
एकटा गंध
आ, बसातक एकटा मोहर लागल चिट्ठी
आब बूझल जे क्यो मेहदी किए लगबैत अछि।

दू

चलू हटू
एना दुलार जुनि छिड़िआउ
पहिले शुद्ध मे अशुद्ध भेल छी
कनेक बहय दियौक पछबा
तखन बुझबैक जे ठोर कोना फटैत छैक।

तीन

सिउँथक सिनूर
पिसाइछ कलकत्ता मे
बम्बइ मे, दिल्ली मे
नोरक सदावर्त्त
द' ने सकत चैन
कहियो नहि मिझाइत छैक भट्ठी केर आगि।

चारि

'अहाँ केँ हमरे सप्पत'
हमरो बूझल अछि
जे कहियो ई बड़ मीठ लगैत छैक

मुदा ई जिनगी
तेहन कसकूट बाटी थिक जे
कतबो ओरियाक' किछु राखू
कसाइन होयबे करत।

पाँच

ई दुलार-सिनेहक कथा
एकटा विशाल दैत्य
अपना दुर्दान्त मुट्ठी मे कसने अछि
आब इतिहास मे भेटत ओ शब्द सभ
ई युग थिक तप्पत वर्तमानक
जकरा ऊपर मे छैक लाबा-फरही
अन्तर मे बरकैत अग्नि-स्रोत।

रचनाकाल : 17 मइ 1970
मिथिला मिहिर : 28 जून 1970

आजुक उत्तर

एखने खरखराक' बैसल अछि
अन्हरियाक प्रेत
अपन अजगरी जिह्वा सँ
छिड़िया देलक अछि विष-प्रश्न
सुनत कोन मंत्र
कोन स्वर
अहाँ कोना बूझि सकब उत्तर?

शास्त्रक हथौड़ा सँ सुन्न अछि कपार
अनेक वर्ष धरि होइत रहल
विशेषज्ञ सभक दण्ड-प्रहार
फ्रेम मढ़ल कागत मे निर्वासित शोध
भोथ भ' गेल बन्धु अहँक
शुद्ध आत्म-बोध
क' लेलक गुफाक भूत काया-प्रवेश
अथवा छी अप्रतिभ वेश
एहि घोल-फचक्का सँ
जाहि मे जुटल अछि बड़े उत्साह सँ
विद्यालय, विश्वविद्यालय
सरिपहुँ छी बन्धु अहाँ
किंकर्त्तव्यविमूढ़!

शब्दक बोरा मे
अर्थक अल्हुआ भरबाक प्रक्रिया सँ
अहाँ मोहाविष्ट छी
मुदा काल-रथ ककरो लेल रुकल अछि?
यथास्थितिक आग्रही दैत्य सभक लेल
लिय' जागि लेल
शेष-शय्या सँ क्रोधोत्थित
सृजनैषी मधुसूदन
फेकू अपन खोल
हटाउ अपन तंत्र-मंत्र
दूर करू पूर्वाग्रह

सुनू नवीन ऋचा
उदयाचलक शिखरपर
नव्य-काव्य-स्वर
जे केवल हमरे नहि
समस्त विश्वक थिक
अतीत केँ देल गेल
आलोकित, ऊर्जस्वल, आजुक उत्तर।

रचनाकाल : 21 मइ 1970
मिथिला मिहिर : 28 जून 1970

आक्रामक स्वर

खंड सत्य। विस्थापित
भावनात्मक एकताक
फोंक-फूसि नारा।
सार्वभौम क्रमबद्धता केँ तोड़ि
हमरा ने शुक्लक डर अछि
ने कृष्णक

हम अहाँ जकाँ तटस्थ द्रष्टा
नहि, भोक्ता छी।
गाछपर सँ उतरल एकटा
लुक्खी (नारी)
अहाँक मस्तिष्क पर
अनेक वर्षधरि पड़ैत रहल अछि
काव्य-शास्त्रक हथौड़ा।
ततेक पिटा गेल अछि
जे शुद्ध बोध पिचा गेल अछि,
पचकि गेल अछि
ओ पुरना प्रेत अहाँक घेंट दबौने अछि।
अथवा घोल फचक्का-
सँ अहाँ अप्रतिभ
भ' गेल छी किंकर्त्तव्यविमूढ़।

शब्दक बोरा मे अर्थक
अल्हुआ भरबाक
प्रक्रिया सँ अहाँ
मोहाविष्ट छी।

ओम्हर पीपरक गाछ
एकटा ब्रह्मराक्षस
भाष्यकारक टीका केँ
चरि रहल छैक बकरी
तखन अजा-भक्षित
भ' जायत अहाँक काव्य
यथास्थिति केँ बनौने
रखबाक आग्रही
दैत्य सभ केँ नमस्कार
लिय' जागि गेल अछि
शेष नागक
शय्या सँ क्रोधोत्थित
मधुसूदन।
हमर स्वर केवल
हमरे नहि थिक
ई थिक समस्त
विक्षुब्ध विश्वक
आक्रामक स्वर।

रचनाकाल : 20 मइ 1970
मिथिला मिहिर : 27 सितम्बर 1970

खिस्सा-पिहानी

हऽ
उखड़ि गेल गाछ
अतिवृद्ध, जर्जर
डारि सभ मे कठपिल्लू
घोरन छल लुधकल
टुस्सी सभ मे बाँझी आ कोंकराहा
जाला छलैक छाड़ल
गाछ छलैक मारल
बेस उँचका डीहपर
इतिहासक जीहपर
दोहराओल जाइत छल ओकर नाम
फल्लाँ बाबूक घड़ारी परक गाछ
(हड़ाशंख गाछ)
जनम' नहि दैत छलैक छाहरितर किछु
उच्चवंशावतंस पीपरक गाछ
बैसाख नहाबय बाली सभ
ओकरा जड़ि मे पानि ढारि
गोसाँइक नाम सुनैत छलि
पुण्यलोभे ओकर खिधांस सुनि
आँखि-कान मुनैत छलि
कतेकोक बेटा
बेटा केँ नोकरीक जोगार
फल्लाँ गामबालीक जमायक भातिज

आ कि भागिनक सार
भरिसक ओहि गाछक कृपासँ पौने छल
खुशफैल रोजगार
तें सब लुबधल छलि
पसरल आँचर
हे भगवान
रखिहह एहिपर ध्यान
ज'ड़ि लग ब्रह्मक घोड़ा
फुनगी पर ब्रह्मराक्षस
की लेब?
की ले...ब...?
फ'ड़ आब नहि छलैक
दर्प छलैक छाहरिक
नवका छौड़ा सभ ढेलमौस चलबैत छल
कोनो फुनगी केँ निशाना बनबैत छल
वृद्ध जरद्गव केँ कनबैत छल

उखड़ि गेल पुरना से गाछ
बिहाड़िये छल जोरगर
उखड़ल अछि तइयो जड़ि छैक लगले
तें पारू कोदारि
खूनि दियौक चकरगर केँ चौर
चलाउ कुड़हरि
काटू एकर मुसरा
जे हँटय ई ढेंग
जमीन हो साफ
पुरना केँ आब कहू के करतैक माफ?

रचनाकाल : 20 मइ 1970
मिथिला मिहिर : 27 सितम्बर 1970

तीन टा टुकड़ी

तारुण्यक दरपन
हाथसँ छूटि गेल
आसक्ति अशक्तताक
पाथर पर फूटि गेल।

पैघ लोक बनलहुँ अछि
ज्ञान-बुद्धि मांगि क'
हमरा सँ मंगलहुँ तँ
राखि देब धाँगि क'

लोक तँ लोक थिक
विशेषण बिनु संपूर्ण
नहि तँ डाक्टर, रोगी
निर्धन, धनीक चूर्ण

आरंभ : मइ-जुलाइ 1983

• • •

आओ गाएँ इंद्रधनुष

दो शब्द

परमस्नेही मित्र श्री 'किसुन' जी की ये रचनाएँ जीवन के प्रथम भाग की ही रचित हैं। इस छोटी-सी पुस्तिका में कवि-मानस की तरल भावनाएँ किस तरह स्रोत बनकर उमड़ पड़ी हैं, बचपन की मीठी-मीठी मधुमयी स्मृतियाँ किस तरह सजीव हो उठती हैं, इसका पता तब लगता है जब—

सब गये बाग, मैं भी जाता
माँ! झूला आज लगाऊँगा
तू बाबूजी से मत कहना
मैं आज न पढ़ने जाऊँगा।

मानस-पटल पर बचपन की ये बातें प्रतिबिंबित हो जाती हैं। सचमुच—

कितने सुखमय थे वे प्रिय दिन
सुध-बुध सारी खो जाती है!

कवि की यह उक्ति सिद्ध हो जाती है।

भाषा को सुललित एवं भावपूर्ण बनाते हुए भी कवि इस बात को नहीं भूलता है कि यह बालोपयोगी साहित्य बालकों के हृदय को स्पर्श कर सके। 'प्रश्न' शीर्षक वास्तव में प्रश्न बनकर सामने रह जाता है। 'मोटा बैगन' में स्वाभाविक हास्य चूता हुआ मालूम पड़ता है, जिसमें एक कहानी को बड़ी अच्छी तरह छंद के बंधन में बाँध कर चित्रित किया गया है। कवि यद्यपि प्रौढ़ हो गया है, फिर भी बचपन और बचपन की छोटी-मोटी बातों के प्रति हृदय में कितनी ममता है इसका अनुभव स्वयं किया जा सकता है।

श्री चन्द्रनाथ मिश्र 'अमर'
मंत्री, नवरत्न गोष्ठी; दरभंगा

प्रकाशक की ओर से

'आओ गाएँ' के सरस कवि श्री किसुन जी की ये कविताएँ बिहार के सुप्रतिष्ठित 'बालक' तथा 'किशोर' आदि में समय-समय पर प्रकाशित हो चुकी हैं। हिंदी में बाल-साहित्य का जो अभाव रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है। इसे देखते हुए इन कविताओं का लघु-संग्रह किया गया है। पुस्तक के विषय में तो कुछ कहना नहीं है, वह आप ही निर्णय करें। हाँ, इतना भर कि यदि बालकों को यह सुंदर खिलौना भा सका, तो शीघ्र ही कला मंदिर की ओर से इस प्रकार की अन्य पुस्तकें प्रस्तुत की जाएँगी।

हम कला मंदिर की ओर से नवरत्न गोष्ठी, दरभंगा के मंत्री तथा 'वैदेही' के संपादक श्री चंद्रनाथ मिश्र 'अमर' को धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने कृपापूर्वक इसकी भूमिका लिखी है। और साथ ही मिथिला प्रेस, दरभंगा के व्यवस्थापक के हम कृतज्ञ हैं, जिनके सहयोग से प्रकाशन को सुंदर बनाने में हम सफल हो सके हैं।

नागेश्वर कलामंदिर
सुपौल, भागलपुर

प्रकाशक

नयन में सपने-सा जब झूल
थिरकता मधुमय सखे, अतीत
तभी सहसा हिल उठते होठ
निकलता मधुर बाल-संगीत

प्रश्न

कौन है वह ?
विश्व का विभु जो कहाता
है बना जग शांत सम्मह
कौन है वह ?
अति निविड़-तम
अंधकारों में समागम
इस उषा औ' सूर्य का
मृदु प्रेम-संगम
जग-प्रकाशी
बाल-रवि का रथ-तुरंगम
भागता लाया उदासी
आ गयी संध्या मनोरम
ये विहंगम
गा रहे हैं गीत रह-रह

कौन है वह ?
विपिन मंजुल
विटप कंटक से समाकुल
पक्षियों के मधुर-रव से
विकल, संकुल
यह हिमांचल
दीखता है भव्य उज्ज्वल
तीव्र-तप में मग्न

किसकी भक्ति परिमल
और सागर
धो रहा किसका पदोत्पल?
यह क्षपाकर औ' प्रभाकर
नयन किसके हैं सुनिर्मल?
औ' नदी-जल
पूछता क्या प्रश्न बह-बह
कौन है वह?

शैशव की स्मृति

शैशव की जब याद हृदय में
मधुर-मधुर-सी हो आती है।
कितने सुखमय थे वे प्रिय दिन!
सुध-बुध सारी खो जाती है।

रजनी, मैं, जगदीश, हरी, ये
सब के सब थे नटखट लड़के।
सूरज के पहले ही निंदिया
चल देती, उठते हम तड़के।।

रोज बिछावन से उठ, आँखें
मल, सीधे बस चल देते थे।
सब के उठने के पहले ही
घर से हम सब टल देते थे।।

मोहन की फुलवारी में ही
रोज हमारा दल जाता था।
सूनी-सी थी वह फुलवारी
वहाँ नहीं कोई आता था।।

ईंटों के चुल्हे होते थे
मिट्टी की थी पुरी-मिठाई

सजधज कर चीजें बिकती थीं
मैं बनता 'भगलू' हलवाई।।

खाने को वे सब आते थे
ले-ले कर झिकड़ों के पैसे।
तोल-तोल कर मैं देता था
भाव पटाकर जैसे-तैसे।।

पर जब भैया आ जाते थे
सुध-बुध सारी खो जाती थी।
बस फिर तो सारी टोली ही
'नौ दो ग्यारह' हो जाती थी।।

आज बन चले हैं सपने-से
बचपन के वे खेल हमारे।
मधुमय शैशव के प्यारे दिन
आज न जानें कहाँ सिधारे।।

फुलवारी

मेरी छोटी-सी फुलवारी
हरी-भरी
ये कोमल किसलय
कुंजित, गुंजित
सुंदर, मधुमय
छविशाली, मतवाली, प्यारी
मेरी छोटी-सी फुलवारी।

मुक्त लुटाती सौरभ सुंदर
गुन-गुन कर आते हैं मधुकर
राजा भौंरा, तितली रानी
दोनों की चालें मस्तानी
राजा गाता
चलता मधु-स्वर

रानी करती नृत्य विहँस कर
कोमल गीली पंखुरियों पर
प्रतिपग रखती सुंदरता के
छविमय, मधुमय
मतवाली-सी
बन, वसन्त-बाला
भूतल की मुग्ध-अप्सरा
भर मधु प्याली

मतवाली-सी
सजी-धजी, यौवन-लाली-सी।

तरु-तृण-लतिका
झूम-झूम कर
ताल मधुर भर
सिहर-सिहर उठती है गुम-सुम।
खिल उठता उपवन का हीतल
चल पड़ती है शीतल-शीतल—
करती वितरण
प्रतिपल, प्रतिक्षण
मधु सौरभ ले
हवा, पुलक कर
हँस उठते तरु
खिलता मंजर
गुम-सुम, गुम-सुम
नवल कुसुम
गति सुर से हिल-हिल
मधु उँड़ेलता—
झूम-झूम खिल
जुही चमेली
श्वासों में भर सौरभ, बेली

यह गुलाब बनता है राजा
रानी मिल करती रँगरेली
पुलकित, हुलसित
हो उत्फुल्ल, उल्लसित, विकसित
हिला-हिला पादप फुनगी-शिर
आलिंगन कर लतिका को चिर
सरल ताल में झूम, पुलकता

लता लिपटती बाँह खोल, फिर
रोम-रोम पुलकित होता है
हिल उठते हैं कोमल पत्ते
मधुमक्खी तज मधु के छत्ते
लोट-लोट पड़ती कुसुमों पर
करती भन-भन

कलामयी, कविता गा नूतन
मेरा उपवन
प्रतिपल सुधा लुटा कर भरता
उन्मन-उन्मन उर में चेतन
मधुमय जीवन
चिर-सुंदर
सुख का प्रिय निर्झर
उमड़-उमड़ बहता जगती पर
सराबोर रस में रहती है
तरु तृण लतिका क्यारी-क्यारी
मेरी छोटी-सी फुलवारी
सुर-नंदन की रुचि ले सारी।

मोटा बैगन

दो भाई थे कल्लू मल्लू दोनों भाई थे भोदू।
मल्लू था सर्वे का झंडा कल्लू तेली का कोल्हू।।
दोनों बैठे थे दूरे पर बात हो रही थी खासी।
देखा आता बाँकी लेने जमीन्दार का चपरासी।।

बोला मल्लू, भागो भाई, आती सर पर बड़ी बला।
सुनकर बैगन की बाड़ी में कल्लू झटपट भाग चला।।
वह सरपट भागा जाता था तोंद दे रही थी बाधा।
हलचल में वह समझ न पाया आगे में आया खाधा।।

लुढ़का वह फुटबॉल सरीखे गड्ढे में थुलथुल करता।
निकला फिर भी किसी तरह से कीचड़ ले आहें भरता।।
लगता था कीचड़ से निकला ओद बोद होकर हाथी।
लंबी-लंबी साँस तेज थी ज्यों लुहार की हो भाथी।।

गिर कर भी भागा जाता था कुढ़ता-सा वह मन ही मन।
छुपा वहाँ पर जहाँ बड़े से थे बैगन के पेड़ सघन।।
आया चपरासी तो पूछा 'क्या कल्लू जी गये कहीं?'
बोल उठा हड़बड़ में मल्लू, बैगन-बाड़ी गये नहीं।।

सच कहता हूँ गये देहली नहीं मिलेंगे भर बरसात।
सुन कल्लू की उड़ती बोली समझ गया वह सारी बात।।

बोला चपरासी मल्लू से 'मुझे चाहिए बैगन चार'।।
'चलिये बाड़ी' सुन मल्लू भी चला साथ में हो लाचार।।

उसने कल्लू जी को देखा पड़ा हुआ हो जैसा काठ।
सोचा बस अच्छा मौका है सिखला दूँ बच्चू को पाठ।।
बोला चपरासी मल्लू से 'जरा आप हो जावें मौन।
आज परीक्षा मैं लेता हूँ इनमें असली बैगन कौन।।'

जो असली बैगन होगा वह देगा अपने मुँह को खोल।
हिला-डुला कर पेड़ों को झट बोल पड़ेगा 'हूँ-हूँ बोल'।।
सुन चपरासी की बातें, कर डाला कल्लू ने यह काम।
लल्लू ने मन ही मन सोचा गुड़ गोबर हो गया तमाम।।

चपरासी जोरों से बोला 'क्या हो तुम बोलो फौरन?
कल्लू भी चिल्लाकर बोला—'बाबू, मैं मोटा बैगन।।
'मैंने कहीं नहीं देखा है भालू-सा मोटा बैगन!'
सुन झट-पट बोला कल्लू भी 'बाबू जी मैं हूँ बीहन।।'

चपरासी ने हँस कर पूछा 'बैगन कहाँ तुम्हारा डाल?'
कल्लू उलट गया धीरे-से दिखला दी झट टाँग सम्हाल
लाठी हूल पेट में उसके बोला चपरासी हुशियार।
'बैगन, तुम हो बड़े सयाने' वह बोला 'जी हाँ सरकार!'

'ओ बीहन के मोटे बैगन, छोड़ो अब जंगल की घास।
चोखा कर खायेंगे मालिक चलो वहीं अब उनके पास।।'
यह कह कर चपरासी ने झट पकड़ लिया बैगन के पैर।
घिसिया कर चल पड़ा वहाँ से करता उस जंगल की सैर।।

कल्लू भी घिसता जाता था मन में धैर्य बाँध चुपचाप।
कल्लू देख दशा भाई की चिल्ला उठा 'बाप रे बाप?'

जंगल

जब हलचल से मैं ऊब-ऊब जाता हूँ
औ' अकथ थकन में डूब-डूब जाता हूँ।
तब नदी-तीर इस जंगल में आ जाता
कोमल दूबों पर सो कर जी बहलाता।।

झर-झर, झर-झर झरना, झरता रहता है
कानों में झिंगुर गाकर कुछ कहता है।
हँसते टहनी में फूल यहाँ भड़कीले
लुक-छिप पत्तों में उजले नीले पीले।।

झर-बेरी, बनबेली औ' जुही चमेली
खिल-खिल करती रहती हिलमिल रँगरेली।
तरु में लिपटी बेलें लेती झकझोरें
गुन-गुन गुन-गुन करते रहते हैं भौंरे।।

दूरों तक फैली हरी दूब इठलाती
औ' इधर नदी चुपके से भागी जाती।
तरु की फुनगी पर पंछी शोर मचाते
कौए, तोते, बगुले मिल मोद मनाते।।

फुलचुग्गी, फुद्दी औ' मुर्गाबी, तीतर
मैना, बटेर, वनमुर्गी के मीठे स्वर।
ये फुदुक-फुदुक डाली-डाली पर जाती
उड़ व्योम-लोक में मीठे गीत सुनाती।।

खरहे झाड़ी से निकल, भागते जाते
उस ओर हिरन के संग सियार दिखाते।
पेड़ों पर इधर गिलहरी धूम मचाती
चढ़ती, फिर उतर, कुतर कोई फल खाती।।

परियों जैसी तितली उड़ती बन-ठनकर
बहती पगली-सी हवा सुरभि से सन कर।
हिल-डुल हर-हर करते पीपल के पत्ते
हिलते रहते हैं मधुमक्खी के छत्ते।।

नन्हें-नन्हें पौधों का रसमय कंपन
भरता उदास प्राणों में नूतन जीवन।
कुल चरवाहे गायें औ' भैंस चराते
तरु की छाया में वंशी मधुर बजाते।।

ये पेड़, आम, अमरूद, नीम औ' पीपल
बड़गद औ' पाखर, बड़हर, सखुए, सेमल।
नीबू, खजूर औ' ताड़, करौंदे, कटहल
हिलडुल किसलय से रस टपकाते प्रतिपल।।

उर में नन्दन-सा बन भरता नव-चेतन
खिल उठता है मुरझाया-सा यह जीवन।
मैं जंगल में आनंद खूब पाता हूँ
जब कोलाहल से ऊब-ऊब जाता हूँ।।

झूला

सब गए बाग मैं भी जाता
मा, झूला आज लगाऊँगा
तू बाबूजी से मत कहना
मैं आज न पढ़ने जाऊँगा

तू नहीं कहेगी तो सब दिन
कर दूँगा तेरे काम सभी
तेरा कहना नित मानूँगा
लूँगा न जिद्द का नाम कभी

रजनी, मोहन, जगदीश, हरी
सब हो-हो कर तैयार चले
ले चला बाँस-रस्सी मतीन
हम काट रेलवे तार, चले

जा लगा आम की डाली में
बारी-बारी सब झूलेंगे
पल भर को मधुर हिंड़ोले में
मा, सुख-दुख सारा भूलेंगे

सब खुश होकर हँसते-हँसते
झूलेंगे गाएँगे गाने
फिर पेड़ों की छाया मेरी
मिल, खेल करेंगे मनमाने

मन खूब लगा करता है मा!
उन हरे-भरे बागीचे में
ऊपर करती 'कू-कू' कोयल
हम खेल खेलते नीचे में

ठंढी-ठंढी रहती छाया
शीतल-शीतल बहती बयार
मीठी-मीठी तानें रहतीं
वह हरी-भरी सुषमा अपार

तू कह देगी बाबूजी से
तो मुझे लगेगी मार बड़ी
फिर कह तो टूटेगी न पीठ पर
मा! सचमुच वह बुरी छड़ी

हमलोगों ने भी ठहराया
कोई भी जाएँ स्कूल नहीं
क्यों पीटेंगे मास्टर साहब
ऐसा भी होता रूल कहीं

सुन मा ओ मा! मैं जाता हूँ
फिर साँझ हुए घर आऊँगा
तू बाबूजी से मत कहना
मैं आज न पढ़ने जाऊँगा

निर्झर

मैं निर्झर कहलाता हूँ रे!
झरना ही है काम हमारा।
झर-झर कर रस नीरस में भी
भरना ही है काम हमारा।।

मैं कुरूप पाषण हृदय का
रूपवान शीतल सोता हूँ।
अपने लघु जीवन भर जग की
छिपी गंदगी नित धोता हूँ।।

'सोता' हूँ पर जीवन भर में
क्षणभर को भी कभी न सोता।
आजीवन मैं जागरूक हूँ
सो, सोकर मैं समय न खोता।।
जीवन के उस प्रथम-प्रहर से
ही मैं अपने पर चल देता।
मैं न किसी से कुछ लेता रे
अपनी नैया अपने खेता।।

जीवन की पहली ऊषा में
पायी मैंने लापरवाही।
आजादी का प्रथम पुजारी
चिर-दुर्गम-पथ का मैं राही

पहले ही पहले जीवन में
बाधाओं से मैं खेला।
जीवन भर हँसते ही रहना
सीखा मैंने पहली बेला।।

जगती को शीतल करने यह
चल पड़ती है मेरी धारा।
अपनी धुन में गाता चलता
मेरा एकाकीपन प्यारा।।

जब तक जीता चलता रहता
चलना ही है काम हमारा।
जब तक चलता हँसता रहता
हँसना ही है काम हमारा।।

सपने के-से दिन

एक रोज मास्टर साहब ने
मुझको छड़ी लगाई।
गलती थी मेरी फिर भी
यह बात न मुझे सुहाई।।

लाख रोकने पर भी आँखों
में भर आया पानी।
गला फाड़ कर मैं ने भी
झट आवाजें दे तानीं।।

निकल तुरत श्रेणी से
घर की ओर चल पड़ा रोता।
देखा घर के पास पेड़ पर
कौए का एक खोंता।।

भूल गया सब रोना-धोना
लगा फेकने डंडे।
सोच रहा था, कैसे पाऊँ
इस खोते के अंडे।।

टेढ़ा था वह ऊबर-खाबर
पेड़ और मोटा था।

मैं भी था लाचार ऊफ्
क्या करूँ बुरा छोटा था।।

थक कर तब तक आ पहुँची थी
फिर से मुझे रुलाई।
पास खेलती 'राधा' रोते
देख मुझे मुस्काई।।

बालू ढेर लगा कर राधा
घेर बनाती थी घर।
मैं चल पड़ा सिसकता-सा
उस घर में लात लगा कर।।

बिगड़ गया वह तुरत घरौंदा
वह बोली गुस्सा कर।
दुष्ट निगोड़ा चलता कैसे
लँगड़े-सा इठला कर।।

सुन मुझको गुस्सा हो आया
जमा दिया चट चाँटा।
उसने भी दाँतों से फौरन
मुझे बाँह में काटा।।

दाँत पीस कर मैंने भी तब
बाल खींच दे मारा।
गुस्से से तब तक उसका भी
गर्म हो गया पारा।।

रोक न पाई जब अपने को
लगी तभी वह रोने।

कहने लगा न जाने तब क्यों
मैं उसको चुप होने।।

मैं जितना कुरते से आँसू
पोंछ पोंछ चुप करता।
उतना ही उसकी आँखों से
आँसू तेज उमड़ता।।

आखिर मैंने पीठ उसे
अपनी यह कह दिखलाई।
लो, तुम भी मारो क्यों
करती इसके लिए लड़ाई।।

मारो, लो मारो तुम भी
बदले में जी भर मारो।
तब वह हँस कर बोल पड़ी
'ना'; दोनों खेलें आओ।।

आज कहाँ वे मीठे झगड़े
गये सभी मुझसे छिन।
बचपन के दिन आज
बन चले हैं सपने के-से दिन।।

घटा

बाल खोले हुए रोने की घटा आती है
जिगर के दाग को धोने को घटा आती है।
आज बरसेंगे जमीं पर रिमझिम के मोती
हार आँसू का पिरोने को घटा आती है।
इसे रोने को ही वरदान मिला था विधि से
आज काँटों पर भी सोने को घटा आती है।
नयन की बूँद में लगकर बनी आँसू-आँसू
आज यह रूप भी खोने को घटा आती है।
बनेगी आज मोतियों की नई-सी दुनिया
नए मोती यहाँ बोने को घटा आती है।
पवन सिसक के गया था वहाँ फरियाद लिए
कौन जाने कि क्या होने को घटा आती है।
गगन में, वन में, छन में, जग में यही शोर हुआ
बाल खोले हुए रोने को घटा आती है।[1]

---

1. यह पंक्ति एक उर्दू मुशायरा की समस्या थी। प्रस्तुत कविता उसी मुशायरा के लिए लिखी गई थी—रचयिता।

गीत

सुख-दुख में खुशी मनाता चल
मस्ताने! खुशी मनाता चल।
जग कहे तुझे पागल, तू अपने
शूलों पर मुस्काता चल।
बन लेने दे रोड़े जग को
तू मस्ती में इतराता चल।।

पथ विषम, सूर्य अस्ताचल पर
जाना है मंजिल तक चल कर।
बुझ गया तिमिर-तूफानों से
पथ का प्रदीप बलकर, जलकर।।
तू अपना पथ-निर्माण स्वयं
करता चल, बीन बजाता चल।

सर पर प्रलयी बादल छाये
पग-पग पर बिजली घहराये।।
आगे सागर गा गीत मौत के
चीख-चीख कर लहराये।।
तू डगमग नाव सम्हाले चल
रे! मल्हारें हँस गाता चल।

बहती है जीवन की धारा
सुख-दुख का कूल बना न्यारा।

मानव की इस दुनिया में है
रे! रुदन-हँसी की चिर-कारा।।
तू बंधन खोले बढ़ आगे
मत झुक, रुक कर शरमाता चल।

कर्तव्य-कुटिल-पथ चलो झूम
रे! मचे स्वर्ग में विपुल धूम।
डोले वासव का सिंहासन
ले नियति तुम्हारा चरण चूम।।
अमृत-सुत, विजय-मार्ग में तू
हँस-हँस कर प्राण लुटाता चल।

आओ गाएँ

आओ गाएँ, आओ गाएँ
आओ, हम सब हिल-मिल गाएँ।
अंतर के सोये भावों को
स्वर-तंत्री पर आज जगाएँ।।

फूटे अमर-किरण अंबर से
छूटे नव संस्कृति स्वर-शर से।
घृणा-द्वेष के कुत्सित बंधन
टूटे जन-जन के अंतर से।।
अखिल जगत के सारे मान-
उर में, दिव्य-प्रेम बरसाएँ

अपनी कुटिल कलुषता खोकर
निरुपमेय चिर-उज्ज्वल होकर।।
निखर उठे बन पूर्ण, मनुजता
अपने अंतर के मल-धोकर।
विकल जगत को आज मनुजता
का हम नव-संदेश सुनाएँ।।

फूकें जागृति-शंख चिरंतन
खोलें जटिल-रूढ़ि के बंधन।
चेतन क्या, जड़ में भी भर दें
हम प्राणों का मधुमय स्पंदन।।

नाच उठे जग स्वर की गति पर
हम वह अंतर—बीन बजाएँ।

गूँजे मंगल-वेणु-मृदुल रव
फैले अग-जग में स्वर अभिनव।।
बुद्धिवाद की कटु विडंबना
से हो आज प्रगति का उद्‌भव
रोड़े हों पथ-निर्देशक, हम
आओ ऐसी राह बनाएँ।।

आओ गाएँ, आओ गाएँ
आओ हम सब हिल-मिल गाएँ।
भूले-भटके जग को आओ
हम नव स्वर-संकेत दिखाएँ।।

प्रस्तावना

विचारशील पाठकों के समक्ष 'इंद्रधनुष' तथा उसके गायक को प्रस्तुत करते आज हमें अपार हर्ष हो रहा है। इंद्रधनुष और कविता में अत्यधिक घनिष्ठ संबंध है। इंद्रधनुष मानव-जीवन को उसके वाह्य-चक्षु द्वारा आनंद का सृजन कर उसके हृदय और आत्मा का आनंद-प्रेरक बनता है किंतु कविता उसके हृदय के अंतरतम कोने को गुदगुदा कर हर्ष और विषाद के स्रोत का सृजन करती है....किंतु, यह 'इंद्रधनुष' मानव के अंतश्चक्षु द्वारा अपने सतरंगे रंग उड़ेल मानव-जीवन के मानचित्र को विभिन्न रंगों में रंग डालता है।

व्योमपुत्र इंद्रधनुष का जीवन क्षणिक है और उसे अपने प्रकाश-पुंज एवं सतरंगे रंग को प्राप्त करने के हेतु भगवान भुवन-भास्कर की प्रतीक्षा करनी होती है। सूर्य की रश्मियाँ अपनी प्रसन्नता को मेघ के कृष्ण-पत्रों पर ही अंकित कर पाती हैं, किंतु यह कविपुत्र 'इंद्रधनुष' अपने विकास तथा स्थिति के हेतु कवि के हृदय की प्रेरणाओं एवं उसमें उठते हर्ष-विषाद, आशा-निराशा से बढ़ते हुए कवि-जीवन की कल्पनाओं को छूता, उसकी अनुभूतियों में विलीन हो जाता है। एक के हेतु वाह्य-जगत अत्यंत ही आवश्यक है किंतु दूसरा अंतर्जगत की दिव्य प्रेरणा है। दोनों ही मानव-जीवन को भावना के अज्ञात प्रांत में बहा ले जाते हैं। किंतु दोनों के दो रास्ते हैं।...मेघाच्छन्न आकाश में क्रीड़ा करता हुआ इंद्रधनुष मानव में उसके जीवन के कटु अनुभवों के अनुसार ही भावनाओं की सृष्टि करता है। एक निराश प्रेमी उसमें निराशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं देख पाता, साथ ही एक सुखी जीवन को आशा और विश्वास के अतिरिक्त दुख की छाया भी कतई देखने को नहीं मिलती। कवि के 'इंद्रधनुष' के साथ ये बातें लागू नहीं हैं। यहाँ तो आप पाएँगे कि कवि एक कुशल मदारी की भाँति आपकी भावनाओं को अपने हृद्गत भावों के अनुकूल नचाता है। उसके सुख में सुख एवं आशाओं, निराशाओं, विश्वास आदि में हमें कवि का साथ देना पड़ता है।

प्रसन्नता तो इस बात की है कि इन हृद्गत भावों के समस्त परिवर्तन अत्यंत ही स्वाभाविक ढंग पर होते हैं। कवि अपने पाठकों का विश्वास नहीं खोता।

अत: कवि के 'इंद्रधनुष' से परिचय कराना अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है। आपको यह जानने की स्वाभाविक उत्कंठा होगी कि कविता के इस संग्रह में 'इंद्रधनुष' शीर्षक एक भी कविता नहीं, फिर यह 'इंद्रधनुष' कैसा? प्रकृति के प्रकाश-अंधकार एवं आशा-निराशा के बीच आंदोलित जीवन की बहुमुखी धाराएँ ही कवि के अनुसार उसके गायन के विषय हैं। और इसलिए उसने जीवन के अंतरंग एवं बहिरंग विभिन्न भावनाओं द्वारा ही अपने 'इंद्रधनुष' की रचना की है।

हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, सुख-दुख, जीवन-मरण, रुदन-हास, प्रेम-घृणा तथा विरह-मिलन आदि पर कवि के भाव हृदय को छूते हुए उसके मस्तिष्क द्वारा उद्भूत होते हैं एवं कवि एक दार्शनिक के रूप में इन समस्याओं का समाधान आपके सम्मुख उपस्थित करता है।

'इंद्रधनुष' में झाँककर आप इन्हीं रंगों का नृत्य देखेंगे। कवि के इस संग्रह में यदि आप उसके जीवन की झाँकी खोजना चाहें, तो उसे भावनाओं के रंग में तल्लीन-तन्मय ही पाएँगे। और इस प्रकार आपका प्रयत्न यदि पार्थिव रहा तो वह असफल ही रहेगा। कारण कवि के 'इंद्रधनुष' की नायिका है कविता-कामिनी एवं मानव-जीवन; न कि कवि का स्थूल जीवन। यथा कवि 'कविता प्रेयसी से' वर माँगता हैं—

दिव्यगान कर सकूँ आज
जीवन का प्रेयसि, वह नव स्वर दे।

अत: इस सुकुमारी की भावनाओं की गति जिस दिशा में जा सकी कवि की कलम ने पागल की भाँति उसकी भावनाओं का चित्र खींचने के हेतु उन सभी प्रांतों को छान डाला है।

उक्त कथन की सत्यता के हेतु 'इंद्रधनुष' का ही आधार समुचित होगा।

हर्ष-विषाद—आज जरा आप हर्ष-विषाद की आँखमिचौनी देखें—

छलक आया ओस बन भू पर हृदय का प्यार
उमड़ आया प्राण में सहसा अपरिचित हर्ष
पंखुरी पर रसभरा कोमल किसी का हाथ
आँकता था चित्र, गुमसुम सिहर आए प्रान

में आप प्रकृति और मानव-जीवन के संगम की उठती लहरों द्वारा प्रभावित मानव-जीवन का एक कलात्मक चित्र पाते हैं। प्रकृति और मानव के घनिष्ठ संबंध

का सजीव चित्रण 'एक फूल की आत्मकथा' में प्राप्त होगा। जीवन और प्रकृति के संबंध में कवि आनंद की छाया देखता है। किंतु उसी कवि द्वारा प्रस्तुत विषाद की छाया आपको दुखी बना देगी।

युग बीता प्रिय रोते-रोते।
जगती के ऊसर आँगन में
विकल नयन के मोती बोते।

और अंत में हालात और भी नाजुक हो उठते हैं जब—

आज थक रहे गीत
व्यथा के असह भार को ढोते-ढोते।

के स्वरों में कवि चीख पड़ता है।

आशा-निराशा— *तुम कहो जग का विषम ही*
किंतु मैं समतूल भी हूँ
तुम समझ लो शूल ही
अपने लिए मैं फूल भी हूँ।

में कवि अपने सर्वान्त:करण से अपने को पहचान पाता है और इसलिए उसकी 'स्व' विषयक आशा विश्वास में परिणत हो जाती है, 'शूल ही' को कवि 'फूल भी' समझता है। आज के अत्याचारों से पीड़ित मानवता के हेतु वह अपनी विश्वासात्मक आशा से अपने 'कवि' को—

टूक-टूक माँ वसुंधरा है
फूट-फूट रोता नभमंडल
इस अजस्र करुणा धारा में
कूद, तुम्हें ही सूचिकार?
इस फटे हृदय को सावधान होकर सीना है।
कवि तुमको तो विष पीना है।

के स्वरों में आवाहन करता है। किंतु उसी कवि की निराश मुद्रा देख उसे आप पहचान तक न पाएँगे—

मेरा यह असफल जीवन ही
आज बना दुखांत कहानी
साक्षी हैं तारे, पूछो कब
सूख सका आँखों का पानी।
या

जलता रहा अबाध निरंतर
दीपक-सा मेरा यह जीवन
आकुल-उर को मिला आज तक
सुखी विश्व का व्यंग चिरंतन।

सुख-दुख—सुख-दुख को कवि ने एक ही चित्र के दोनों पृष्ठ (Two sides) के रूप में देखा है—

सुंदर कुसुमों के उपवन के
ये काँटे ही रखवाले हैं।
सुख-दुख की मिश्रित मदिरा से
भरते जीवन के प्याले हैं।
या
दुख में सुख की प्यास, और
सुख में दुख का उपहास छिपा है।
सृष्टि प्रलय है 'अथ' में ही तो
'इति' का कटु इतिहास छिपा है।

जीवन-मरण—जीवन की सार्थकता पर कवि का अटल विश्वास है। यथा—

जीवन-दीपक के जलने से जग में प्रकाश खिलता उठकर
जिस जीवन में जितनी ज्वाला, उतना प्रकाश उतना सुंदर

किंतु सार्थक जीवन के कठिन संघर्ष भी कवि की आँखों से ओझल नहीं हो पाए हैं—

जीवन का वरदान 'वेदना'
औ अभाव की ज्वाला
जिसमें जीवन की स्थिरता है
ज्यों धागे में माला।
तथा
दीपक का जलना ही जीवन, निर्झर का चलना ही जीवन
सुख-दुख की व्याकुल घड़ियों में मानव का पलना ही जीवन

आदि पंक्तियाँ कवि के 'जीवन' संबंधी भावनाओं को स्पष्टत: इंगित करती हैं।

रुदन-हास—मानव न हँसता है, न रोता है। परिस्थितियाँ ही उसे हँसाती या रुलाती हैं। इस प्रकार रुदन और हास की परिस्थितियाँ ही विधात्री हैं। और इसलिए

जहाँ कवि रोने में अपार सुख-संतुष्टि का अनुभव कर गा उठता है कि—

मुझको सुख मिलता रोने में
हल्का कुछ कर लेने जी को
नयन बरस पड़ते कोने में।

वहाँ कठिन संघर्षों के बीच पड़कर भी वह छाती ठोक कर परिस्थितियों को ललकार उठता है—

मैं कब रोया?
सुख कब पड़ा हमारे बाँटे
पग-पग में चुभते थे काँटे
पर न चला मैं उसे हटाकर
हँसा मचल हर ठोकर खाकर
जग के इस ऊसर आँगन में
कब आँसू का मोती बोया?

प्रेम-घृणा—कवि अपने प्रेम को वासना के शिकंजे से पृथक् रखकर विशुद्ध प्रेम के रूप में ही देखता है—

पागल, मोह रूप का होता
जिसमें पलभर को दिल रोता
यह तो पावन प्रेम कि जिसमें
विरह-मिलन का अमृत सोता।

और इस प्रकार उसकी धारणा है कि वासना जन्य प्रेम, प्रेम नहीं मोह है एवं उसका जीवन क्षणिक है। इस प्रकार का सच्चा प्रेम गणित शास्त्र के सभी नियमों का प्रत्याख्यान करता हुआ—

एक एक 'दो' झूठ हुआ रे
एक एक मिल 'एक' आज है
यही निराला गणित प्रेम का
मिला कि जिस पर मुझे नाज है।

की नूतन परिभाषा हमारे सम्मुख उपस्थित करता है। साथ ही कवि की भावना घृणा के विकृत रूप को भी अपने दर्पण से अंत:करण में अंकित करने में अत्यंत सफल रही है। सुंदर 'गुलाब' पर सर्वस्व न्यौछावर करने वाले प्रेमीजन उसकी परिवर्तित अवस्था में किस प्रकार त्याग बैठते हैं कि कवि घृणात्मक स्वर से बरबस कह उठता है—

आज धूल में वही लोटता
यही नियति की मूक कहानी
पागल, किसका कौन यहाँ?

विरह-मिलन—यों तो विरह-मिलन प्रत्येक मानव के लिए उतना ही सच है जितना जीवन और मरण, किंतु विरह-मिलन के प्रति आज तक मानव अपना विचार दृढ़ नहीं कर पाया है। कुछ लोग विरह को मिलन से भी अधिक आवश्यक समझते हैं, कारण विरह में ही मिलन का सच्चा आनंद प्राप्त होता है।...किंतु एक निराश प्रेमी जब विरह-व्यथा से ऊब जाता है तो मिलन के हेतु अकुला उठता है। कवि विरह में मिलन की छाया देखता है—

स्वप्न में मैंने तुम्हारे रूप का आकार पाया
आज अपने को मिटाकर सजनि, तेरा प्यार पाया।

इस प्रकार कवि कभी विरह में ही संतुष्ट दीख पड़ता है तो कभी मिलन के लिए अकुला कर अपने 'तुम' से—(अपने प्रिय से) मिलने को ललक उठता है—

गंध पवन से, मधुप कुसुम से
मिलते अंतराय खो सारे
किंतु न मैं 'तुम' से मिल पाता
ज्यों न नदी के मिलें किनारे।

और इस प्रकार अंत में कवि की भावना मिलन के लिए व्याकुल-विह्वल होते हुए भी विरह के धरातल से दूर नहीं हो पाती। आखिर है भी तो यही बात। विरह से पृथक् रहकर कोई आत्मा 'कलाकार' कैसे बन सकती?

इसके अतिरिक्त कवि की कुछ मर्मस्पर्शी पंक्तियाँ, जो बड़ी सुंदर बन पड़ी हैं—कला की गहराई तक पहुँचकर कवि की उच्चता का संकेत कर रही हैं।

अपने को मिटाकर प्यार पाने की कला को समझने वाला कवि जब अपनी 'दाह' और 'चाह' के परीक्षण का निमंत्रण देता है कि—

हृदय पर रख हाथ देखो उठ रही है दाह कैसी।
पुतलियों की सेज पर इठला रही है चाह कैसी?

तो पुतलियों की सेज पर इठलाने वाली चाह सचमुच सरस-हृदय में एक 'चाह' उत्पन्न कर देती है और वह चाह जब 'तृषित उर का स्वप्न असफल' बनकर रह जाती है तो कवि उसकी परिभाषा इस प्रकार करने को बाध्य हो उठता है—याद जिसकी शेष है, उस प्यास की तसवीर हो तुम।

कितनी अच्छी परिभाषा है यह?

इसी प्रकार मानव की परिभाषा करते हुए—कवि की धारणा स्पष्ट हो उठती है कि मानव जब 'इस कठोर मिट्टी का प्रेमी' होकर कहता है—

सागर का खारा पानी यह
गिरि का कंकड़-पत्थर
जग के कण-कण प्रिय हैं सारे
सुंदर और असुंदर।

तभी हम उसे सच्चे मानी में मानव कह सकते हैं। और इस तरह सभी सुंदर-असुंदर पदार्थों को प्रिय समझने वाला कवि 'आज की दुनिया' में जब देखता है कि—

मानव आज दनुज से बढ़कर
मचा रहा प्रलयंकर लीला।

तो दानव बने हुए मानव को धिक्कारते हुए कहता है—

छिः मानव, मानव बन जाओ।
(काश, मानव सचमुच मानव बन सकता!)

किंतु आगे बढ़कर जब वह देखता है कि—

आज लाखों दीन-दुखियों के
हृदय की व्यस्त-पीड़ा
कर रही आकाश मंडल में
प्रलय की कुलिश-क्रीड़ा।

तो घबराकर वह अपनी जीवनसंगिनी कविता-प्रेयसी का आह्वान करता हुआ एक नया संसार बसाना चाहता है जिसमें पलायनवादी मनोवृत्ति नहीं प्रत्युत निर्माणात्मिका प्रवृत्ति ही काम करती है। कवि कहता है—

आओ जीवनसंगिनि, हिलमिल
एक नया संसार बसाएँ।

और उस संसार के निर्माण करने के निमित्त वह अपनी प्रेयसी से अनुरोध करता है—

तू अपने पायल की झंकृति से
जग को चिर-मोहित कर दे।
मैं दूँ फूँक मुरलिका अपनी
तू अलमस्त मधुर-सुर भर दे।

इतना ही नहीं, वह तो इतनी दूर उठना चाहता है कि—

पिएँ सुधा, वसुधा के मानव
छीन स्वर्ग से हम ले आएँ।

क्योंकि कवि यह अच्छी तरह जानता है कि आज के युग की इन सारी जटिल समस्याओं का समाधान 'साहित्य' है—'काव्य' है। और' इसलिए जब वह अनुभव करता है कि—

भिन्न-भिन्न हैं वाद चल पड़े।

जन तबाह है, युग तबाह है, यह सारी दुनिया तबाह है—

और इस प्रकार विभिन्न गुटबंदियों के चलते विश्व में संघर्ष का वात्याचक्र घूम रहा है कि—

जिससे रोता भारत
रोती दुनिया
रोता युग।

तो वह अपने 'कवि' का आश्रय लेता है। वह अच्छी तरह यह समझता है कि इन सबों का समाधान कवि ही कर सकता है। अत: वह अपने 'कवि' से विह्वल होकर अनुरोध करने लगता है—

यह शांत करो
कुछ तान भरो
ओ गायक तेरे ही कर में तो
मधुर रागिणी की बीना है।

सचमुच कवि ही युगद्रष्टा तथा युगस्रष्टा होकर हमें शांति दे सकता है—इन सारी समस्याओं का हल कर सकता है। कवि का 'मधुर-रागिणी' वाला विचार कितना महान और कितना सुलझा हुआ है?

अधिक न लिखकर मैं इतना ही कह देना अलम् समझता हूँ कि इस प्रकार की अनेक ऐसी पंक्तियाँ हैं जो काव्य-कला की अभिव्यंजना, सूक्ष्मता, गांभीर्य तथा उत्कर्ष की अनुभूति को हमारे समक्ष रखकर कवि की कला साधना को 'द्युति-रेखा' की तरह ज्वलंत आलोक में निखार कर, हृदय को रस के सागर में अवगाहन तथा निमज्जन का सुखद निमंत्रण देती हैं।

इस प्रकार विभिन्न भावनाओं के प्रांतों से बहुरंगे रंग एकत्र कर कवि ने अपने 'सुंदर इंद्रधनुष सतरंगा' का शृंगार किया है। यह 'इंद्रधनष' जीवन रूपी क्षितिज में उदित होकर हमारी भावनाओं के तार को छेड़कर आँखमिचौनी करता है—खेलता और खेलाता है।...और अंतत: उसी में विलीन हो जाता है। इस 'इंद्रधनुष'

की सृष्टि में कवि ने पाठकों की भावनाओं को किसी भी प्रकार छला नहीं है। वह जीवन की गंभीर समस्याओं को अपने व्यक्तित्व के पाँवों तले रौंदना कदापि पसंद नहीं करता। सच तो यह है कि जीवन तथा परिस्थितियों ने कवि के व्यक्तित्व के साथ वह धाँधली मचा रखी है कि कवि का व्यक्तित्व उनके द्वारा आच्छादित हो जाता है। अभी कवि और उसकी कविता का 'स्थिर विकासवादी' संघर्ष विजय प्राप्त कर मानव को कुछ नूतन स्वप्न प्रदान कर सकेगा या विजयी जीवन और परिस्थितियाँ कवि की भावनाओं को रौंदकर धूल में मिला देंगी एवं अट्टहास करेंगी, जिसे सुन कवि एक विक्षिप्त मानव की भाँति स्वत: में खो जाएगा। भविष्य के मन की बातें कौन जानता है?

हाँ इतना अवश्य है कि कवि की साधना एक सच्चे साधक की साधना है जिसमें 'सिद्धि' की झलक सन्निहित रहती है। और अंत में कवि के स्वर में ही मैं इतना कह देना चाहता हूँ कि—

कवि का मन वह विशद-गगन है।

कोशी दर्पण
गंगा दशहरा
सं. 2007

नृसिंह प्रसाद तिवारी
एम.ए.
संपादक—'कोशी दर्पण'

दो शब्द

भाई श्री रामकृष्ण जी की प्रथम कृति 'इंद्रधनुष' के अवलोकन के बाद मेरे मानस में भावनाओं की खिचड़ी-सी बन गई। बचपन की चपलता, यौवन की उमंगें, निराशा के बादल और धीरों की कामना, सब ने एकबारगी ही भाव-लहरी को उद्वेलित कर दिया। तब मैंने समझा, आखिर यह पुस्तिका भी तो बहुरंगों की एक समष्टि ही है। नाम जो ठहरा 'इंद्रधनुष।'

इंद्रधनुष को देखकर Wordsworth को उसका बचपन याद आ जाता था किंतु इस 'इंद्रधनुष' को देखकर तो मुझे बिहारी लाल की वह पंक्तियाँ याद हो आईं—छुटी न शिशुता की झलक, झलक्यो यौवन अंग। और वह इसलिए कि इस कविता-कामिनी के बाल सुलभ चुलबुलेपन पर यौवन की छाया जो खेल रही है। कवि की लेखनी मचल कर कहती है—

आओ जीवन-संगिनि हिलमिल
एक नया संसार बसाएँ।

कविताकामिनी के 'नयन सलोने अधर मधु' को लेकर कवि की लेखनी ने जो अजीब नमकीन मिठाई प्रस्तुत की है, वह भावुक मन को भा सकेगी—आशा है। कवि का प्रथम प्रयास प्रोत्साहन चाहता है और उसी के जरिए कवि की भावुकता 'तरुणी-तन' छोड़ 'दलित-त्राण' पर पहुँचेगी।

अक्षय तृतीया,
संवत् 2007

श्री बलराम सिंह
बी.ए.डिप.इन. एड

प्रकाशक की ओर से

इंद्रधनुष के सरस गायक श्री किसुन जी की ये कविताएँ *सरस्वती, विश्वमित्र, नवशक्ति, प्रभाकर, आर्यावर्त* आदि भारत की सुप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रही है। इन कविताओं का संग्रह साहित्यसेवा की जिस भावना से की गई है, वह श्लाघ्य है। पुस्तक के विषय में इसकी अनतिविस्तृत प्रस्तावना ही पर्याप्त है। कोई भी सहृदय इस नवोदित कवि की प्रतिभा तथा कला साधना के गौरव एवं इस प्रथम प्रयास की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता।

यद्यपि इस पुस्तक को सुसज्जित रूप में निकालने का विचार था, किंतु प्रेस के नवीन तथा अनुभवहीन रहने एवं अन्य अनेक अनभीष्ट कारणों से ऐसा न हो सका। इस हेतु पाठकों से अगले संस्करण तक के लिए क्षमा-प्रार्थना की जाती है।

हम कलामंदिर की ओर से 'हमारा देश' के भूतपूर्व तथा 'कोशीदर्पण' के वर्तमान संपादक श्री नृसिंह प्रसाद तिवारी जी एम.ए. के अत्यंत आभारी हैं, जिन्होंने इंद्रधनुष की प्रस्तावना लिखकर पुस्तक में चार चाँद लगा दिए हैं एवं इस प्रकार हमें अनुगृहीत करने की कृपा की है। इसके अतिरिक्त श्री बलराम सिंह जी बी.ए. डिप. इन. एड. के भी हम अत्यंत कृतज्ञ हैं।

नवीन होते हुए भी कोशी-प्रेस तथा उसके वर्तमान प्रबंधक श्री योगेंद्र प्रसाद जी को उनकी उदारता तथ सहायता के लिए हम शतश: हार्दिक धन्यवाद देते हैं। साथ ही कवि के प्रिय छात्र श्री सत्यनारायण प्रसाद गुप्त तथा अन्य मित्रों के सहयोग-साहाय्य के हेतु हम सदा ऋणी हैं।

कर्क संक्रांति
संवत् 2007

श्री राकेश
नागेश्वर कला मंदिर, सुपौल
भागलपुर

मैं नहीं जानता छंद, वर्ण,
मात्रा, गण, कविता, अलंकार
जब भाव हृदय के उमड़ उठे
गुन-गुन कर लेता एक बार

वर याचना

वाणि! वर दे।
हृदय-वीणा में मधुर कुछ तान भर दे।
गीत-निर्झर हो हृदय से आज नि:सृत
किंतु; काँटों-पत्थलों से हो न आवृत्त
बह चले स्वच्छंद चिर-निर्बंध
तोड़ छंदों के पुराने बंध
विश्व को स्वर में डुबो दे आज
चेतनों की बात क्या जड़ भी सजा लें साज
तोड़ फेके वह पुरातन-ताज
देवि, मानव के हृदय में प्रेम का हो राज
सुप्त मानवता जगे वह तीव्र स्वर दे।
वाणि! वर दे।

तड़ित्-गति से विश्व में वह ज्योति जागे
मनुज के उर का घृणित-संस्कार भागे
मर्त्य से ले स्वर्ग तक हो गान गुंजित
दिग् विदिक् हो अमर मानव-राग रंजित
शिथिल उर में उमड़ आए भाव नूतन
फूँक दें हम शंख जागृति का चिरंतन
प्रगतिमय संस्कृति-स्वरों से फूट जीवन
शून्य जड़ में रच उठे साकार चेतन
देवि, पावन-शक्ति उर में आज भर दे।
वाणि! वर दे।

कविता प्रेयसी से

पथ मेरा आलोकित कर दे।
दिव्य गान कर सकूँ आज
जीवन का, प्रेयसि वह नव-स्वर दे।

भावुक-मन इस रीते यौवन
की केवल तू ही हो संबल
तेरे सरल करों से लालित
कवि का उर होता चिर उज्ज्वल
कवि की ओ एकांत प्रिये
निज मधुर-हास से चिर तम हर ले
मधुर प्यार तेरा ही पाकर
मरने तक प्रेयसि जी लूँगा
दीवानों की रानी, हँस कर
ये कड़वी घूँटें पी लूँगा
किंतु, प्रिये तुम मेरे असफल—
—जीवन मरु में मधु-निर्झर दे।
एक मात्र तू दीवानों के
सूने उर में यौवन भरती
एकमात्र तू जीवन-मरु में
भावों के अमृत-कण भरती
फूकूँ मैं निज सरल मुरलिका
तू अलमस्त मधुर स्वर भर दे।
पथ मेरा आलोकित कर दे।

मानव

मैं मानव ही मानव
इस कठोर मिट्टी का प्रेमी
इस सागर का कलरव
मैं मानव ही मानव
सागर का खारा पानी यह
गिरि का कंकड़-पत्थर
जग के कण-कण प्रिय हैं सारे
सुंदर और असुंदर
अलका के उस निर्विराम—
—सुख का न कभी मैं भूखा
जिसमें दुख का स्रोत
रहा करता सूखा ही सूखा
दुख से वंचित जीवन
सुख की शीतलता क्या जाने
जीवन का अमरत्व शाप है
व्यर्थ विहग के गाने
जीवन का वरदान 'वेदना'
औ' अभाव की ज्वाला
जिसमें जीवन की स्थिरता है
ज्यों धागे में माला
जलकर स्वर्ण पिघल, बनता है
सुंदर; प्रिय औ अभिनव
जीवन की अभिलाषों का है
इस अभाव से उद्भव!

तेरा प्यार

आज अपने को मिटाकर सजनि, तेरा प्यार पाया
अनगिने काँटे चुभाए
कुसुम का सहवास पाने
गरल का चुंबन किया
हँसकर सुधा की प्यास लाने
और-लहरों से चिरंतन-शांति का उपहार पाया
आज अपने को मिटाकर सजनि, तेरा प्यार पाया
साधना की आँच ने
लहरा दिया है आज अंतर
पूर्णता ने दे दिया है
शून्य को वरदान सुंदर!
स्वप्न में मैंने तुम्हारे रूप का आकार पाया
आज अपने को मिटाकर सजनि, तेरा प्यार पाया!
हृदय पर रख हाथ देखो
उठ रही है दाह कैसी
पुतलियों की सेज पर
इठला रही है 'चाह' कैसी...!
सजग-पलकों में अचानक स्वप्न का संसार पाया
आज अपने को मिटाकर सजनि, तेरा प्यार पाया

गीत

तुम समझ लो शूल ही
अपने लिए मैं फूल भी हूँ
विश्व हो प्रतिकूल मेरा
किंतु मैं अनुकूल भी हूँ

हँस रहे तुम, हँस रहा जग
हँस रही है रात...हँस ले
जी करे उद्‌गार दे या जी करे
तो व्यंग्य कस ले

मैं न तेरी रोक बनता
मैं नहीं करता मनाही
लाख रोड़ें हों, चलूँगा
मैं वही हूँ मस्त राही

तुम कहो जग का विषम ही
किंतु मैं समतूल भी हूँ
तुम समझ लो शूल ही
अपने लिए मैं फूल भी हूँ।

विकल उर की पीर हो तुम

विकल उर की पीर हो तुम।
हृदय जो उस रूप-सौरभ पर
मधुप-सा मुग्ध हो द्रुत
गा उठा सुधिहीन विह्वल
प्रणय की मृदु-रागिणी प्लुत
दीप्त यौवन भूल जग के द्वंद्व
विहँसा मधु लुटा कर
किंतु हँस कर नियति ने
रोकी तरी मेरी पुलिन पर
लौटकर पा, अंधतम,
निकले नयन के नीर हो तुम।
तारकों के दीप वाले!
प्रणय की प्रिय रात आई
मुग्ध, मादकता मधुर
लघु प्राण में सहसा समाई
रूप की वह चिर अपरिचित मूर्त्ति
आई पास विह्वल
मैं बढ़ा पर हाय, वह था
तृषित उर का स्वप्न असफल।
याद जिसकी शेष है
उस प्यास की तसवीर हो तुम
विकल उर की पीर हो तुम

जीवन : एक परिभाषा

जीवन, यह कितना सुंदर है, जीवन, यह कितना प्यारा है?
जीवन बहती धारा, जिसका सुख-दुख यह कूल किनारा है।
सुख नव गुलाब का मंजु सुमन और सुरभि सुमन का यौवन है
दुख के काँटों में ही पलकर पाता गुलाब मधु-जीवन है।

सुंदर कुसुमों के उपवन के ये काँटे ही रखवाले हैं
सुख-दुख को मिश्रित मदिरा से भरते जीवन के प्याले हैं।
जीवन-दीपक के जलने से जग में प्रकाश खिलता उठकर
जिस जीवन में जितनी ज्वाला, उतना प्रकाश, उतना सुंदर।
जीवन क्या है? हँसते रहना, जीवन क्या है? खिलते रहना
जीवन सुख-दुख की आँधी में अस्तित्व लिये हिलते रहना।
आए दुख, झुककर अगवानी, जाए सुख, विदा करो हँसकर
होठों पर खिले गुलाब, हृदय में उमड़े आँसू का सागर।

दीपक का जलना ही जीवन, निर्झर का चलना ही जीवन
सुख-दुख की व्याकुल घड़ियों में मानव का पलना ही जीवन

युग बीता प्रिय रोते-रोते

युग बीता प्रिय रोते-रोते
जगती के ऊसर-आँगन में
विकल नयन के मोती बोते

किंतु कभी क्या पल भर को भी
दे पाए बोलो आश्वासन
नभ में हुए विलीन, उपेक्षित
वन्य-कुसुम से मेरे गायन

प्यार लिए अरमान तड़पते
रहे सदा नादान ह्रदय के
ओ मेरे पाषाण, हुए हैं
'अथ' में चिर-अधिकार प्रलय के

इस निस्सीम-प्रतीक्षा में
आया तिल-तिल अपनापन खोते
युग बीता प्रिय रोते-रोते

जिस पर मुझको नाज कभी था
वह अतीत की मादक घड़ियाँ
आज बनी उपहास, पिरोता
मैं चुपचाप अश्रु की लड़ियाँ

तुमने दिए बहाने, पर दिल
नहीं हाय, मैं बहला पाया
तेरी नीरव-मुस्कानों से
व्रण न ह्रदय का सहला पाया

इस रीते जीवन के क्षण, कटु
आज हो गए मधुमय होते
युग बीता प्रिय रोते-रोते

मेरा यह असफल जीवन ही
आज बना दुखांत कहानी
साक्षी हैं तारे, पूछो कब
सूख सका नयनों का पानी!

जलता रहा अबाध निरंतर
दीपक सा मेरा यह जीवन
आकुल-उर को मिला आज तक
सुखी विश्व का व्यंग्य चिरंतन!

आज थक रहे गीत व्यथा के—
असह भार को ढोते-ढोते
युग बीता प्रिय रोते-रोते।

मुझ से दूर

आज मुझ से दूर, प्रिय तुम
आज मुझ से दूर
हो चुकी है रिक्त प्याली
खो चुका जगमग दिवाली
आज जीवन शून्य; छाई
प्रिय अमा की रात काली
तिमिर-दुर्गम-पथ, चलूँ
कैसे कहो; मजबूर!
प्रिय तुम आज मुझ से दूर
आज विह्वल प्राण मेरे
धूल में अरमान मेरे
प्रिय तुम्हारे चरण छूने
आज बिखरे गान मेरे—
—विकल-से, पथ पर हृदय की
ज्वाल ले भर पूर
प्रिय तुम आज मुझ से दूर
खोजता था नीर किंचित्
चिर-पिपासित दग्ध अंतर
और मेरे सामने थी
सैकड़ों मधुपूर्ण गागर
किंतु मेरे ओठ लगते ही
हुईं सब चूर...
प्रिय तुम आज मुझ से दूर

थी कभी रसपूर्ण राका
थे कभी रंगीन सपने
मधुर था जीवन, पराए
भी बने थे मित्र अपने
आज वे ही स्वप्न मुझको
प्रिय रहे हैं घूर
प्रिय तुम आज मुझ से दूर
बुझ चुका है दीप उज्ज्वल
हो रहा हूँ शून्य प्रतिपल
अगम-तम में डूबते—
उतरा रहे हैं, प्राण निर्बल
छिन गया है आज सहसा
आँख का भी नूर...
प्रिय तुम आज मुझ से दूर
मैं चला था प्यार देने
प्रिय तुझे उपहार देने—
—हृदय का छिपकर सुनहला
मधुभरा संसार लेने
किंतु सब निष्फल हुआ
तुम ही गए जब दूर...
प्रिय तुम आज कितनी दूर!

देव, लौटा लो यह उपहार

सृष्टि के आदि पर्व का रोर
उभड़ आया जब बंधन खोल
कर्म की फूट पड़ी नव-ज्योति
सत्य का उस दिन करने मोल

शून्य में फैली एक तरंग
जगी कोई अनजानी प्यास
दृष्टि में आया एक अभाव
हुआ 'इच्छा' को नव उल्लास

विश्व में गूँज उठा सब ओर
प्रकृति की सुंदरता का गान
सिहरने लगे पुरुष के प्राण
कौन यह आकर्षण अनजान?

प्रकृति की आँखों के उन्माद
भरे फैले नीरव-संदेश
पुरुष दौड़ा आया सब छोड़
भूलकर अपना सारा क्लेश

लिये उर में मीठा-सा दर्द
दृगों में लेकर विह्वल प्यार
रौंद कर उस दिन सब व्यवधान
हुआ आकारहीन साकार

जगे मेरे भी नव अरमान
अपरिचित-सा कोई उन्माद
माँगने मैं भी आया देव
लिए अधरों पर करुण विषाद

हृदय में नाच उठी हे देव
अचानक यह मतवाली चाह
कि मेरी भी हो सत्ता एक
कि मेरा भी हो एक प्रवाह

रचा तब तूने मेरा रूप
दिया हँसकर मुझको वरदान
भिन्नता के भर अनुपम रंग

कर्म का मंत्र कान में फूँक
दिए भर आकर्षण के भाव
दिखाया मेरे-अपने बीच

दिए सुख-दुख के अनुभव, ज्ञान   रहस्यों से भरपूर दुराव
पुलक चल पड़ा कर्म की ओर
लिए अपना सारा अधिकार
पा लिया मैंने तुमसे देव
मधुर अपनेपन का उपहार
मधुर अपनेपन का उपहार   प्रकृति ने कर अनुपम शृंगार
भिन्नता का प्यारा उन्माद   छोड़कर सुंदरता का राग
मोहिनी माया का पा प्यार   लिया सारी जगती को मोह
न रह पाई अपनी भी याद   वासनाओं की फूँकी आग
पुरुष बेवश दौड़ा बेहोश
सहेजे उर में कोमल प्यार
रूप के नयनों ने शर छोड़
अजित को किया विजित, लाचार!
कामनाओं की लिए तरंग—   कि बंधन में देखा आनंद
हृदय में दौड़ा सुधबुध भूल   कर्म का दुर्गम पारावार
चढ़ाने माया के सुकुमार—   उठा करते जिसमें हे देव
चरण पर अपना जीवन—फूल...   सदा सुख-दुख के अगणित ज्वार
ज्वार में आकर्षण भरपूर
प्रकृति का मोहक हँसता रूप
कूद सागर में, हुआ निहाल
लिए अपनापन देव अनूप
हँस रही थी माया उस ओर   चौंक कर देखा अपनी ओर
कहा लहरों ने तब ललकार   चूर हो गए सभी अभिमान
'भवर यह दुर्गम औ अनजान   हाय कैसा महँगा उपहार
न जा सकते पागल उस पार'   न अपनी भी होती पहचान
न जाऊँगा मैं सागर बीच
चाहिए मुझे न यह उपहार
विश्व के मधु बंधन का लोभ
मधुर अपनेपन का अधिकार
भिन्न सत्ता यह कितनी मूढ़   देव, लौटा लो यह उपहार
हाय, कितना निर्दय व्यापार   विकल हो प्राण उठा यह चीख
न हो अपनेपन का अधिकार   न दोगे क्या फिर से हे देव

देव लौटा लो यह उपहार तड़पते उर की माँगी भीख?

हुए हैं हम-तुम दोनों भिन्न
हुआ अब सहसा ऐसा ज्ञान
कि तुमसे मिलकर होने एक
चल पड़े मेरे व्याकुल प्रान

बढ़ा मैं जितना तेरी ओर
हो गए तुम उतनी ही दूर
काँप कर मेरे सब विश्वास
टूट कर हुए शून्य में चूर

हटे कैसे अब यह व्यवधान
न रह पाऊँ मैं तुम से भिन्न
मिटा दो मेरा यह अस्तित्व
देव, कर दो सब बंधन छिन्न

लीन हों तेरेपन में देव
कि 'मेरेपन' के सब अधिकार
न रह पाए 'मैं-तू' का भाव
देव, लौटा लो यह उपहार

नादानी

पागल यह कैसी नादानी ?
घबरा मत हँस-हँस कर कर ले झुक कर दुख की भी अगवानी
अरे रात की कठिन तपस्या ही
सोने-सा दिन लाती है
पतझड़ की आहें बसंत की
मुस्कानों को बिखराती हैं
रुदन-हास ही तो दुनिया है, दुनिया से क्यों कर हैरानी ?
सुख आया हँसता ही आया
हँस-हँस कर जीवन बहलाया
हँसना रुका दुख हो आया
सुख ही बदला दुख कहलाया
वह भी देखा, यह भी देखो, यह तो दो दिन की मेहमानी
दुख में सुख की प्यास और
सुख में दुख का उपहास छिपा है
सृष्टि प्रलय है 'अथ' में ही तो
'इति' का कटु इतिहास छिपा है
जीवन ही हँसकर करता है महाकाल की रे अगवानी
यहाँ फूल के काँटे साथी
ऊषा में संध्या दिखलाती
हँस-हँस कर आता वसंत है
चीख-चीख वर्षा रो जाती
सुख-दुख दोनों एक, विश्व के नग्न-सत्य को यही कहानी

नया संसार

आओ जीवन संगिनि, हिलमिल
एक नया संसार बसाएँ
नियति-चक्र के ऊपर आकर
आज अमर-त्यौहार मनाएँ
पारिजात के कुसुम यहाँ के
तृण-तृण में विकसित हो झूलें
अपने में रम कर प्रेयसि री'
अपने को ही अपने भूलें
तू अपने पायल की झंकृति
से जग को चिर मोहित कर दे
मैं दूँ फूँक मुरलिका अपनी
तू अलमस्त मधुर सुर भर दे
पिएँ सुधा वसुधा के मानव
छीन स्वर्ग से हम ले आएँ
अपनी दुनिया के अंतर में
अमर-शांति की ज्योति जगाएँ
कर्मबीन के बोल अनूठे
कोयल इस नव-जग में बोले
विरह-मिलन की इस कारा से
सजनि मुक्त हम दोनों हो लें
हँसकर नव-संगीत-कुसुम की
गूँथ बनाएँ जीवन-माला
हँसकर ओठों से ढरका लें
सहचरि, सुख का मधुमय प्याला

खोल विश्व का मोहक बंधन
अभिनव-जीवन-कला सिखाएँ
हम अपने निर्द्वंद्व जगत् को
शाश्वत सत्य रूप में लाएँ

सत्यं-शिवं-सुन्दरम्

सत्य सृष्टि का प्रथम सात्य है
मानवता का पूर्ण विकास
अमर-रेख है चिर-सत्ता की
चरम बिंदु का स्वच्छ प्रकाश

नग्न-सत्य तीखा होता है
कटु-कटु-सा तीता-तीता
किंतु सत्य के बिना रहेगा
सुंदरता का घट रीता

सुंदर भी वह ही सुंदर है
जो हो सत्यभरा तन्मय
सुंदरता से भरा सत्य ही
होता है जग में शिवमय।

सुंदरता वरदान विश्व का
मरु का प्रिय अमृत-वर्षण
कर्म-क्लांत साधना जहाँ पर
पा लेती है सुख दो क्षण

सुंदरता नयनाभिराम है
सुख की प्रिय धारा निर्मल
शांति-स्रोत में जग कर लेता
अपने तन-मन को शीतल

'सत्य', सूर्य की तीव्र किरण है
'सुंदरता' है स्वच्छ प्रकाश
'शिव' है रश्मिपुंज का
आविर्भाव, उदय, संसृति औ ह्रास

सत्य मृत्यु है, शिव उद्‌भव है
सुंदरता है विरह-मिलन
सत्यं-शिवं-सुन्दरं से ही—
होता है संहार-सृजन

परिचय

एक

मैं गिरि का चंचल निर्झर हूँ
किसी एक अज्ञात इशारे पर
चल पड़ने वाला स्वर हूँ
ऊपर से गिरता हूँ भू पर
लिए एक अभिनव-चेतन-गति
पथरीले-पथ दुर्गम-कानन
कुश-काँटों में मेरी संसृति
काट कठिन पाषाण, विपिन को
निर्विराम गति से बहता हूँ
किंतु कहाँ तक; ज्ञात न मुझको
टेढ़े-सीधे बह, कहता हूँ
सुनो विश्व, मैं प्रश्न नहीं हूँ
मैं सीधा-सादा उत्तर हूँ
मैं गिरि का चंचल निर्झर हूँ।

दो

मैं सागर का खारा जल हूँ
हूँ अगाध निस्सीम, किंतु
अपनी सीमा में भी निर्बल हूँ
मेरे उर में उठती रहतीं
उद्वेलित-लहरें प्रलयंकर

एक लहर के मिटने पर
शत-शत रहतीं मिटने को तत्पर
मैं विशाल; जग का सारा जल
मुझमें लय होता है हिल-मिल
किंतु न अब तक जान सका हूँ
कितनी दूर है मेरी मंजिल
जड़ हूँ पर जाने किस विद्युत्
से संचालित चिर-चंचल हूँ
मैं सागर का खारा जल हूँ

तीन

मैं चिर-गतिमय मधुर पवन हूँ
मैं प्राणों का प्राण किंतु
निष्प्राण स्वयं, जग का जीवन हूँ
मुझ में शरद-शिशिर की सर्दी
मुझ में लू की भीषण गर्मी
मुझ में झंझा की कठोरता
मुझ में कुसुम-वास की नमी
निर्विराम चलता रहता हूँ
सूने निर्जन में जनरव में
दलितों की गंदी कुटियों में
धनिकों के प्रकोष्ठ अभिनव में
मिली न अब तक मुझे चेतना
यद्यपि चेतन का चेतन हूँ
मैं चिर-गतिमय मधुर पवन हूँ।

चार

मैं गुलाब का नवल-कुसुम हूँ
काँटों में हँसता-सा दो क्षण
वास लुटाता चिर गुमसुम हूँ
कभी पवन मीठी थपकी दे

सुख का नव-संदेश सुनाता
कभी तीव्र बन, मेरी कोमल—
पंखुरियाँ दल, धूल उड़ाता
फिर भी मैं हँसता रहता हूँ
चाहे गिरे हृदय पर पत्थल
रोता हूँ, जब शरद्-गगन
बरसाता ओस-अश्रु रो विह्वल
झर पड़ता हूँ पतझड़ से कह
ओ सूनापन, मैं भी 'तुम' हूँ
मैं गुलाब का नवल-कुसुम हूँ।

पाँच

मैं न जानता कैसा क्या हूँ?
मैं हूँ सृष्टि, सृष्टिकर्ता या
मैं न पुराना या न नया हूँ।
अपना भी अस्तित्व न मैं कुछ
खुलकर अब तक जान सका हूँ
इसी खोज में आता-जाता
पर यह अब तक पा न सका हूँ
आया कितनी बार अभी तक
किसने इसकी गिनती आँकी
मेरे पद-चिह्नों से धरणी
रही न अब तिल भर भी बाँकी
किंतु अभी तक अपने को
पहचान न पाया क्षुद्र, महा हूँ
मैं न जानता कैसा क्या हूँ?

राही

मैं राही चलता जाता हूँ
खोया-खोया-सा अपने ही
आप न जाने क्या गाता हूँ
आज यहाँ कल वहाँ रहा
बस यों ही पथ बीता जाता है
कभी नगर के उच्च महल हैं
कभी शून्य वन दिखलाता है
निर्जन में, जनरव में भी
अपना ही गीत लिए आता हूँ
मैं राही चलता जाता हूँ।

अपने और पराए का मैं
भेद भाव बोलो क्या जानूँ?
सुख-दुख की परिभाषा क्या है
मैं राही कैसे पहचानूँ?
हँसता भी हूँ रोता भी हूँ
पर कुछ तथ्य नहीं पाता हूँ
मैं राही चलता जाता हूँ।

कोई आकर पूछ बैठता
बोलो राही क्या गाते हो
कहाँ जा रहे, कहाँ से आते
एकाकी क्यों दिखलाते हो
अनायास भर आईं आँखें
बस फिर गीत बुला लाता हूँ

मैं राही चलता जाता हूँ।
मंजिल का कुछ ज्ञान नहीं है
पथ का भी अवसान नहीं है
चलता हूँ, चलता ही जाता
रुकने का अरमान नहीं है
थककर पलभर बैठ, पुनः
चलता, पथ तय करता जाता हूँ
मैं राही चलता जाता हूँ।

पत्ते

तरु के पत्ते पीले-पीले
ये आते कोमल किसलय बन गुम-सुम-से, एक कहानी ले
झरने वाले पत्ते पीले

ये आते लघु-लघु, प्रिय, सुंदर
ये छाते डाली-फुनगी पर
कोमल-कोमल-से हरे-हरे
उग जाते सपने-से आकर
ये मुक्त हवा में पलते हैं,

तरु हरा-भरा हो जाता है
नन्हें नन्हें पत्ते पाकर
शिशु-से पलते, हिलते-डुलते
ये विटप-गोद में मिलजुल कर
झुककर उठकर सूखे-गीले

तरु के पत्ते पीले-पीले

फिर आती इनकी हरियाली
घिर आती यौवन की लाली
हरियाली तरुणाई बनकर
भर लाती सपनों की प्याली
नीचे रहती धरणी विशाल

सपने-सी कलियाँ खिलती हैं
कलियाँ वे अवगुंठन वाली
ये पते होते तरुण, वृक्ष तब
होता है गौरवशाली
ऊपर में विस्तृत नभ नीले

तरु के पत्ते पीले-पीले

कितनी सर्दी-गर्मी सहकर
कितनी सख्ती नर्मी सहकर
कितनी झोंकों-झंझाओं से
लड़ते रहते ये जीवन-भर
दो फल का जीवन स्वर्ग बना

कहते मानव को पाठ अमर
ये ले झिंगुर का मीठा स्वर
मानव, मत घबरा दुनिया में
जीतो जीवन दुख से लड़कर
हँसकर अपना आँसू पीले

कहते तरु के पत्ते-पीले

ये मस्त झूमते हैं जी भर
पत्तों का जग तरु की डाली

जीवन का सच्चा रस पीकर
ये चिर-योद्धा जीवन-रण के
ये एक रूप बाहर-भीतर
किरणों में जल, ओलों में पल,

है सृष्टिकाल मधु-ऋतु सुंदर
ये नूतन बन फिर आने को
झर पड़ते जब आता पतझड़
बतलाते जीवन के हीले

तरु के पत्ते पीले-पीले

यह नाश-सृष्टि का क्रम अनंत
चिर-शाश्वत यह पतझड़-वसंत
पल-पल मिटकर बनता रहता
जीवन बुद-बुद-सा, कहाँ अंत?
ये पीले पत्ते झर कहते,

जीवन की सरिता बहती है
सुख-दुख के तट में ही पलकर
जो बुंद जहाँ से आती है
जाती है वहीं पुनः चलकर
जीनेवाले हँसकर जी ले

तरु के पत्ते पीले-पीले

अंतर्नाद

प्रिय, यदि तुम को पाता
अपने उर का एक-एक कर सारा घाव दिखाता
फिर कैसे तुम कहो छोड़कर
कभी निकलने पाते
बाँध हृदय में रख लेता
तब बोलो कैसे जाते?
निष्ठुरता की भी सीमा है
...तुम निष्ठुर हो जाते?
बोलो प्रिय, सचमुच
क्या तब तुम योंही मुझे रुलाते
मैं तुम को कब जाने देता मेरे भाग्य-विधाता
मैं यदि तुम को पाता।
नयनों के मोती का मैं नित
सुंदर हार पिरो कर
तुम्हें पिन्हाता प्रिय, सारा
अपना अपनापन खोकर
तुम मुस्काते मैं हँस देता
प्रिय, विभोर मन होकर
रुठ स्यात् जाते तो लेता
मना, तुम्हें रो-रोकर
यों ही अपना सारा जीवन प्रिय, मैं धन्य बनाता
मैं यदि तुमको पाता।
तुम रहते हो दूर, व्यथा

रहती मेरे अंतर में
नित नवीन ज्वाला उठती
मेरे प्रत्येक-प्रहर में
बनकर बिगड़-बिगड़ जाती है
संकुल नीर-लहर में—
मेरे मन की भोली आशा
आँखों के सागर में।
तुम आते तो अपने उर का यह संगीत सुनाता
मैं यदि तुम को पाता।
'एक-एक' प्रिय, 'दो' होता है
यह तो है चिर-निश्चय
दो मिल हो 'चिर-एक'
यही तो जीवन का पूर्णाशय!
एक बिंदु से उद्‌भव का
होता उसमें ही लय
फिर क्यों है यह विरह;
मिलन से वंचित अबतक? विस्मय!
मैं हूँ दुर्बल, अंतराय मुझसे न हटाया जाता
प्रिय, यदि तुमको पाता

एक फूल की आत्मकथा

आज उमड़ी थी सुनहली रात
हँस रहा था आज बेहद, चाँद पुलकित गात
चाँदनी छन कर सुरभि से लोटती सोल्लास
डुबकियाँ ले-ले, नहाकर मैं लुटाता वास
लौटता था स्वर्ग-सा सुंदर सुधामय-हास
बुझ रही थी आज युग-युग की तड़पती प्यास
तारिकाओं से भरा था स्वच्छ नीलाकाश
आज सुख साकार होकर नाचता था पास
आज हर्ष-विभोर
मैं, मिलाकर आँख, चुपके खेलता था खेल
तारिकाओं से, मधुर मुस्कान आज उँड़ेल
नाचता सुधिहीन-सा उन्मुक्त आज चकोर
आज बंधन तोड़
चल पड़ी थी निर्झरी पागल पिया की ओर
झूमता था पत्तियों में मस्त
पवन देता था मुझे झकझोर
रात, उजली रात
थिरकती निस्सीम सुंदरता भरी रे' रात
झूमकर
बेहोश तृण-तरु-पात
रच नया संसार
मनाते उन्मुक्त थे, सुख का मधुर त्यौहार
दे रहे थे विश्व को सुख का अमर उपहार
आज उमड़ी थी सुनहली रात
हँस रहा था आज बेहद चाँद पुलकित गात

अचानक उलझी किसी सुकुमार—
अंगुली का पा मधुर स्पर्श
छलक आया ओस बन भू पर हृदय का प्यार
उमड़ आया प्राण में सहसा अपरिचित हर्ष
पंखुरी पर रसभरा कोमल किसी का हाथ
आँकता था चित्र गुमसुम सिहर आए प्रान
हो गए बेसुध किसी के साथ।
ढल गई मदहोश प्याली, मिल गया वरदान
तोड़ टहनी से लिया उसने मुझे अनजान
हो गया पूरा किसी का आज रे अरमान
खिल उठा अंतर किसी का चल पड़ी मधु-गान
आज उसके देव का उपहार
—मैं बनूँगा...सिहर आए प्रान
धन्य मैं?
मुझको मिला है
प्रिय पुजारिन के हृदय का प्यार
आज झूलूँगा किसी के कंठ का बन हार

और मेरा मृदुल अंतर चीर
बाँधती निकली हृदय से डोर
आह फिर भी मैं न तनिक 'अधीर
बन, हुआ विचलित...' वरन्
पाकर पुजारिन का असीम स्नेह
हो उठा पुलकित विहँस कर आज आत्म-विभोर
गूंथकर मेरा सुकोमल हार
श्वास में भरकर निखिल-अनुराग
चल पड़ी देने पुजारिन देव को उपहार
आज उसके प्राण में है नवल जीवन राग
आज उसके स्वप्न होते जा रहे साकार
आज वह अर्पित करेगी प्राणधन को हार

...किंतु, यह क्या? देव अंतर्ध्यान
हो गए, तज मोह मंदिर का अचानक आज
हा, पुजारिन का विमूर्च्छित रो उठा रे प्रान
व्यर्थ ही होगा कहो क्या साज?
भस्म होकर रह गए सब प्रार्थना के भाव
जल उठी उर में अरे अंगार
शून्य उसका हो गया संसार
आज उद्वेलित-हृदय में विकल हाहाकार
कौन-सा यह पाप?
जो पुजारिन का हुआ वरदान ही अभिशाप
हाय, निष्फल ही हुई सब साध
देव?...बोलो क्या हुआ अपराध?
ऊफ, तुम हो निठुर ममताहीन
मसल डाले हो पुजारिन के सभी अरमान
वह समझती थी तुम्हें (निर्मम?) सदा भगवान
और' तुम निकले अरे पाषाण।
चीखकर चिरकाल को मुरझा गए रे प्राण
बह चली यों आँसुओं की धार
(जल उठी उर में अरे अंगार
शून्य इसका हो गया संसार
आज उद्वेलित हृदय में विकल हाहाकार)
दे किसे पगली, कहो 'उ...प...हा...र?'

हाय, मेरी भी न पूरी आस
आज की यह आखरी है आह मेरी साँस
धूल में मैं लोटकर करता मरण-आह्वान
आज उड़ना चाहते हैं, शून्य में ये प्रान
हार था...सब झर गए रे फूल...बंधन तोड़
याद में रख जा रहा हूँ आह केवल 'डोर'!

मैं कब रोया?

मैं कब रोया?
विपदाओं की आँधी आई
पथ में घोर-अँधेरी छाई
पर मैं कब ऊबा घबराया
कब किसका आश्वासन पाया
गिरि वन या खाई-खंदक हो
मैंने कब हिम्मत को खोया
मैं कब रोया?

आई झंझा दुख की तानें
रोए जग या गाए गाने
जग को उसको रोना ही माने
पर मैंने छेड़ी हैं तानें
सागर में कूदा पर सोचो
कब उसमें यह प्राण डुबोया
मैं कब रोया?

सुख कब पड़ा हमारे बाँटे
पग-पग में चुभते थे काँटे
पर न चला मैं उसे हटाकर
हँसा, मचल हर ठोकर खाकर
जग के इस ऊसर-आँगन में
कब आँसू का मोती बोया
मैं कब रोया?

उपालंभ

किस तरह हों गान मेरे
जब चतुर्दिक जल रहे हों
हृदय के अरमान मेरे
किस तरह हों गान मेरे

बह रही लू आज विधवा
के जले निश्वास लेकर
सिसकता चलता पवन
चिर-मूक-हृदयोच्छ्वास लेकर
सूख जाते ढुलक कोने में
कहीं चुपके नयन-जल

काँपता अज्ञात-आशंका
लिए सागर अचंचल?
हृदय की मरुभूमि में रे
एक हाहाकार-सा है
किस तरह हो गीत, जीवन
जब बना कटु, भार-सा है

इन अछूतों की व्यथा ही
हिंद के है शैल सारे
आज चिनगारी बनी है
व्योम के जलते सितारे
मूक है आकाश, इन पर
देख अत्याचार निर्मम

आज लाखों दीन-दुखियों के
हृदय की व्यस्त पीड़ा
कर रही आकाश मंडल में
प्रलय की कुलिश-क्रीड़ा
लाख पेटों की धधक ले
दग्ध-रवि किरणें बिछाता

बिलखती निस्तब्ध रजनी
बिखर पड़ती लाख शबनम
आज इनकी यातना से
बरस पड़ते विकल-सावन

कँपकँपी ले नग्न-गातों की
सिहरता माघ आता
पार्टियाँ, ये वाद, दंगे
सांप्रदायिक विविध सारे

बह रहें चिर-व्यग्र गंगा—
बन' इन्हीं के अश्रु पावन

बस गरीबों के लिए ही
हाय, बलिवेदी बना रे

इन गरीबों के हृदय की
टीस के आह्वान से रे
अस्थि खँडहर में रुदन बन
लहर उठते गान मेरे।

जीवन का सुख है खोने में

जीवन का सुख है खोने में
तुम क्या जानो क्या मिलता है
तिल-तिल औरों के होने में
जीवन का सुख है खोने में

तुम कहते सुख है पाने में
रस है औरों के गाने में
जीवन का सारा भेद निहित
है 'पर' को बस अपनाने में
पर सुख तो है लुट जाने में
सौरभ उड़ेल मुस्काने में
अर्पण कर औरों पर अपना
सर्वस्व; स्वयं मिट जाने में

दे ज्योति जगत को दीपक-सा
जल-जल कर फिर बुझ जाने में
जग को दे अमृत, गरल स्वयं पी
नीलकंठ बन जाने में
तू पूछ पतंगों से, मिलता
क्या है जलकर मिट जाने में
उस दीप-शिखा पर अर्पण कर
जीवन, तन-मन झुलसाने में

सारा रहस्य है खोने में—
—जीवन का, जीवन होने में
मैं कहता सच्चे गीतों का
सच्चा स्वरूप है रोने में
जीवन का सुख है खोने में।

फक्कड़

मस्ताने फक्कड़ घूम रहे

उर में कुछ नव संदेश लिए
ओठों में नव-मुस्कान लिए
धरती पर स्वर्ग आँकने को
तूलिका उठा, वरदान लिए

दुनिया में अपनी एक नई
दुनिया की मीठी तान लिए
जग के बंधन की रूढ़ि खोल
कर, स्वतंत्रता का गान लिए

आरती सजाने चाँद उतर
आया सूने नभ से हँसकर
तारिका-कुसुम चू फक्कड़ के
चरणों को हँस-हँस चूम रहे
मस्ताने फक्कड़ घूम रहे

अलका धरणी पर लोट गई
जग बनता जाता है नंदन
नाचती उर्वशी की गति में
पड़ गया अचानक अवगुंठन

परियों के उर में हूक उठी
कोयल पतझड़ में कूक उठी
मधुबाला के कर से प्याले
गिर गए, हुआ मधु में कंपन

साकी अपने को भूल गया
खोया-खोया हो गया जगत
मस्ती का आसव पी-पीकर
मस्ताने फक्कड़ झूम रहे
जग में फक्कड़ ये घूम रहे।

गीत

मुझको सुख मिलता रोने में
हल्का कुछ कर लेने जी को
नयन बरस पड़ते कोने में
रोती हैं सागर की लहरें
गले-गले मिल चीत्कार कर
रोता है उत्तुंग हिमालय
झर पड़ता है रोकर निर्झर
जगती को जीवन मिलता है
वर्षा के आँसू खोने में
रोता है निशिभर सूने में
अमित-तारिका-चक्षु निशाकर
छलक मोतियों-सा प्रभात को
आता ओस-अश्रु धरणी पर
सूने उर का समाधान है
आँसू के मोती बोने में
मुझको सुख मिलता रोने में

उस पार

'इस पार प्रिये तुम हो मधु है
उस पार न जाने क्या होगा'
उस पार हमारे जीवन का
आधार न जाने क्या होगा

होगा अपना प्रिय कौन वहाँ
किससे हँसकर कुछ बोलूँगा
आँसू का देगा मोल कौन
किससे खुल कर कुछ रो लूँगा
कैसे बतलाएँ मानव से
होगा विधान कैसा उसका
उस नियति देव को देने का
उपहार न जाने क्या होगा

इस पार कही हँसकर अपनी
उस पार न जाने क्या बीते
किस तरह भरेंगे मानव के
अरमानों के ये घट रीते
कैसी होगी दुनिया उसकी
कैसा होगा व्यवहार प्रिये
उर की इस नन्हीं दुनिया का
आकार न जाने क्या होगा

किस तरह यहाँ से ढोकर के
ले आऊँगा यह भार प्रिये
तेरे मधुमय उर का बंधन
निस्सीम ह्रदय का प्यार प्रिये

तुम मिली, मिला था अर्पित-सा
स्वप्नों का यह संसार प्रिये
अब वहाँ बँधे उर की वीणा
का तार न जाने क्या होगा

जाना है लहरों से होकर
मानव के सब बंधन ढीले
पीना है खार समुद्र, नयन
मेरे दोनों गीले-गीले
मुझको हँसने का रोग
वहाँ कैसी कारा यह कौन कहे
उस पार हमारे जीवन का
उपचार न जाने क्या होगा

इस पार मिला बंधन का मधु
औ मधु बाला का साज प्रिये
उस पार मिलेगा अनजाना आदेश
नियति का राज प्रिये
इस पार हमारा रुदन-हास था
कुसुम-कंटकों का जीवन
उस पार मनुज की साधों का
अधिकार न जाने क्या होगा

बच्चन जी की उक्त दोनों पंक्तियाँ एक कवि सम्मेलन की समस्या थी। प्रस्तुत कविता उस कवि सम्मेलन के लिए ही लिखी गई थी।

अंतिम चाह

मैं तुमसे दिल को लगा चुका
और अपनी हस्ती मिटा चुका
तब क्यों दुनिया से डर जाऊँ
जब अपना सर्वस लुटा चुका

तेरे बस एक इशारे पर
अपनी कुर्बानी कर डाली
तुमने हँस-हँस कर जो दे दी
वह प्याली मैंने सरका ली

यह कोई कठिन नहीं सचमुच
तुम मेरे हो यह कह लेना
सब से मुश्किल है यह सोचो
अपने को तेरा कर देना

पर मैं तेरा होकर भी हा-
तुझको अपना-सा पा न सका
क्षणभर भी तुम मेरे न हुए
मैं हृदय खोलकर गा न सका।

जग मुझको कहता है पागल
सच है, अब तो मैं 'मैं' न रहा

खो गया, लुटा, मिट चुका, किंतु
तुमने पल भर अपना न कहा

पूरी मेरी कुछ साध नहीं
हो सका एक अरमान नहीं
मेरी इन बलियों का निष्ठुर
जग दे पाया स्थान नहीं

अपना कहने को कौन रहा
किसको कह सकता हूँ अपना
मैंने समझा जग जादू है
जग ने समझा यह है सपना

थक चुका पहुँचकर मंजिल तक
अब शेष न मेरी राह रही
अब भी अपना कह दो मुझको
बस यह ही अंतिम चाह रही

सूखा गुलाब

कभी इसी सूखे गुलाब को
उपवन का था राज मिला
जीवन के मधु पूर्ण-प्रहर में
मधुपों का था साज मिला

कभी इसी पर ढरकाती थी
शबनम अपनी मधु-प्याली
इठलाता था देख-देखकर
कभी इसी पर वनमाली

मतवाले मधुपों की टोली
सर्वस भेंट चढ़ाती थी
तन्मय बुल-बुल झूम-झूम कर
अपनी कविता गाती थी

कभी इसी का तीखा काँटा
लगता था कोमल प्यारा
सिहर-सिहर उठता था जिससे
उपवन का जीवन सारा

कभी चांदिनी उमड़ नाचती
थी खोले अपनी चोली
कभी इसी के मधुर-वास से
पुलक हवा भरती झोली

आज धूल में वही लोटता
मुरझाया चिर मौन यहाँ
यही नियति की मूक-कहानी
पागल किसका कौन यहाँ

आज की दुनिया

सखे आज की दुनिया करती
नरमेधों का चिर–आयोजन
विश्व–प्रलय का क्रूर दृश्य है
मानवता का शोणित शोषण
नाश नाश चिर–नाश सृष्टि का
महा प्रलय की कोयल बोली
मची धूम संहार देव की
हँसी प्रलय की संहृति टोली

मानव आज दनुज से बढ़कर
मचा रहा प्रलयंकर लीला
'उन्नति पथ की ओर विश्व'
विज्ञान व्यर्थ करता है हीला
संसृति की विद्रूप हँसी बन
प्रलय भर रही अपनी झोली
मानवता के उर पर मचती
आज रक्त की निर्दय होली

मानव जो भगवान कभी था
आज वही दानव कहलाए
दानवता लख मानवता का
रूप विकट रे आज लजाए
छि: मानव, मानव बन जाओ
रूप बदल मानवता भोली
खड़ी उधर विजयश्री लेकर
स्वागत को शुभ अक्षत रोली

बजी जंजीर

बजी जंजीर बजी जंजीर
निशा की घोर नींद में मौन
जहर की गूँज उठी चित्कार
दिशा के सोए तम का आज
अचानक भग्न हो गया द्वार
विकल जननी का रूँधा कंठ
चीख कर उठा पुकार अधीर

क्रांति का राग
तरुण रे, जाग
बज उठा दौड़-दौड़ रे वीर।

आज कारा का बंधन तोड़
कठिन पाषाण-शिला को चूर
जला दे आडंबर में ज्वाल
खुले पथ, हटे कुहासा दूर
जला प्राणों का उज्ज्वल-दीप
जले जग-तिमिर-वक्ष को चीर
तरुण निश्शंक ?
भरे आतंक
तुम्हारे उद्‌बोधन का तीर

चलो तो कौन रोकता राह
कौन-सी बाधा रखती रोक
कहाँ रे कहाँ तुम्हारा शत्रु
वहाँ क्या गया न यह आलोक
कुचल दे दुर्बलता का मूल
उठा फिर से अपनी शमशीर

काट कर फेंक
जीर्ण व्यतिरेक
बहा दे वह उन्मुक्त-समीर

अभागे से

कितने कष्ट झेलने पर ही
आज मिली थी यह नौका
सागर के उस पार 'प्राण' से
मिलने का मधुमय मौका

चूर हो गईं सब आशाएँ
जब मरु में चलते-चलते
जग आई थी विकल प्यास जब
रेती में जलते-जलते

तो पथ आया कुछ सुंदर -सा
मिलने को था पय-सागर
शीतल सारा तन-मन होता
पारिजात छाया पाकर

पर तू ने सारा खो डाला
चला छोड़ वह सुंदर राह
पिया सुशीतल समझ बर्फ को
धधक उठेगी फिर उर-दाह

परिणाम

ज्यों ही मैंने प्रिय सुंदरता को देखा
खिच आती त्यों ही उर में गहरी रेखा

कुछ दर्द लिए बेचैनी बस आ जाती
उन्मन-उन्मन व्याकुलता है अकुलाती

रह-रह स्मृतियाँ करतीं उर में क्रीड़ा
अँगड़ाई-सी ले उठती मन की पीड़ा

मेरे उर के फिर घाव हरे हो जाते
रह-रह अंतस्तल बीच शूल बिंध जाते

छाया-सी स्मृतियाँ 'आह' पुनः भर लातीं
अनजान कसक-सी व्यथा उमड़ छा जाती

मैं सुधबुध खो तन्मय-तन्मय हो जाता
पर एक व्यथा ही व्यथा सखे मैं पाता

कल्पना

मैंने न उसे प्रिय पहचाना

वह स्वप्न लोक में आकर नित
हृत्तंत्री को छू जाती है
मैं मूक चिरंतन सुनता हूँ
वह अपनी कथा सुनाती है

हाँ इतना तो कह सकता हूँ
प्राय: वह स्वर्ग-कुमारी है
पर नंदन से बढ़ कर उसको
अंतर की जगती प्यारी है

फूलों से वह हँस लेती है
गुन-गुन करती मिल भौरों में
तितली के संग मचलती है
आनंद मनाती हंसों में

लहरों में वह नाचा करती
बादल के संग घूम आती
शिखरों पर चढ़ दीवानी-सी
तारों का चाँद चूम आती

विहगों की चहक लूट लेती
कोयल बन कर गाती गाना
कवि की हृत्तंत्री बज उठती
संगीत निकलता मनमाना

रोती भी है वह रिमझिम से
हँसती तो हो आता वसंत
वह नित्य किया करती सुंदर
मनमोहक मधु-लीला अनंत

रजनीगंधा से धुले गाल
पर मलती ऊषा की लाली
कमलों के अधर बीच
ढरका लेती है वह मधु की प्याली

कलियों की पंखुरियों से चुन
शबनम का हार बनाती है
चुपके से कवि के हृदय-द्वार को
खोल सितार बजाती है

कवि उन्मन व्याकुल हो उठता
होता ज्योंही उसका आना
वह इंद्रधनुष पर चढ़ कहती
क्यों अब तो मुझको पहचाना?

उद्बोधन

जाग, जाग
जग उठा अचानक कौन राग

मैं जाग पड़ा
हो गया खड़ा

देखा जलती है क्रांति-आग
खिल रहा मरण का अरुण-राग

कुछ झूम रहे
कुछ चूम रहे

हँसकर कृपाण का अग्रभाग
मच रहा रक्त का तरुण-फाग

कट रहे वीर
व्याकुल अधीर

हँस-हँसकर बलि पर गा विहाग
धो रहे रक्त से कलुष-दाग

ये हैं शहीद
कुछ रख उमीद

ले रहे गोद में कुपित-नाग
कर रहे पूर्ण बलिदान-माँग

माँ वहीं खड़ी
बंधन जकड़ी

गा रही मौन, आह्वान-राग
गूँजा जननी का वही राग

जाग, जाग

कामना

मेरा उर चिर-विकसित हो
प्रतिपल पुलकित, हुलसित हो
यह तम-पुँजों से विकृत
उर निर्मल आलोकित हो
हो अमर-ज्योति से द्योतित
नव-नव मंगल-अनुमोदित
यह छोटा-सा मम जीवन
क्षण-क्षण जगती के हित हो
तेरे पद पर अर्पित हो
जग का यह नन्हा जीवन
जीवन का यह नन्हा जग
बढ़ चले आज निर्भय बन
शिव-सत्य-रूप सुंदर मग
इस पाप-पुण्य के बंधन
से खुले हमारा यह जग
इस हास्य-रुदन से निर्मित
सुख-दुख चिर-अंतर्हित हो
पल-पल मंगल-मोदित हो

झोपड़ी

चली ओ री कविते किस ओर
अचानक मधु-गीतों को छोड़
बोल कैसी हो आई याद
चली सुनने किसकी फरियाद

अरी पगली यह कैसी भूल
फूल को क्यों कहती हो शूल
छोड़ मधु-स्वप्नों का संगीत
उड़ाने चली आज क्यों धूल

छोड़ महलों का सुख-शृंगार
झोपड़ी को क्यों करती प्यार
वहाँ सुख का न कहीं कुछ लेश
भरा है केवल हाहाकार

अरी वह रोने का संसार
नहीं पलभर को भी मधु हास
झोपड़ी कंकालों का देश
विकट मानवता का उपहास

हँसी-हँसता है चिर विद्रूप
सदा दुखियों का फूटा भाग
वहाँ जलती रहती है नित्य
लुटे दलितों के दिल की आग

चलो गाएँ कुछ मधु-संगीत
किसी विरहिन का हृदय टटोल
यक्ष के उर का ले संदेश
बनाएँ अपना स्वर अनमोल

किसी मधुबाला का उद्गार
भरे प्राणों में जी भर आज
रचें प्रणयी का विह्वल चित्र
सजाएँ मुस्कानों का साज

प्रेम की मधुर बाँसुरी फूँक
झूम लें पलभर सुधबुध भूल
अरुण-अधरों का कर मधुपान
खिला दें रस का कोमल फूल

मानिनी के चरणों पर लोट
चित्र लें उर में देवि उतार
विकल हो रूप-सुधा का पान
करें मुग्धा की घूंघट टार

कुपित प्रेयसि के कंपित ओठ
विहँस कर सहसा लें यों चूम
कि वह भी झूठमूठ के कोप
भरे भावों से जाए घूम

रुठी तरुणी का चित्र उतार
मनाएँ गा कर विह्वल गान
सोच लें जीवन-तरु का मूल
बना लें सुखमय अपने प्रान

भूल यह पागल, तेरी भूल
शूल को ही कहते तुम फूल
देख तंद्रिल-नयनों को खोल
स्वप्न गीतों में मत कवि भूल

देख वह जली प्रलय की आग
उठा रे निठुर ध्वंस का राग
सम्हल अब भी कवि, सपने छोड़
रूप की व्यर्थ अर्चना त्याग

छोड़ महलों का नश्वर प्रेम
चलो लेने दलितों का प्यार
प्रेम के विकल पुजारी अरे
झोपड़ी का चल करो शृंगार

झोपड़ी महलों का सुख-केंद्र
त्याग का है यह सत्य-स्वरूप
यहीं रहते जग-पोषक देव
कृषक सहकर वर्षा औ धूप

इन्हीं के बल पर यह अभिमान
कहो बेबस निरीह लाचार
झोपड़ी से ही लेकर शक्ति
खड़ा कवि महलों का संसार

अनुसंधान

मैं खोज रहा तुमको प्रतिपल
चिर-दग्ध हृदय की प्यास लिए
प्रिय, खोज रहा उन्मन-विह्वल

तुम वह जिसकी कुछ परिभाषा
कर सकी न प्रिय, जग की भाषा
तुम वह जिसका कुछ संबोधन
कर सका न स्थिर चिर जग जीवन

तुम आदिहीन, मेरे अनंत ?
तुम शून्य सृष्टि के दिग् दिगंत
तुम कण-कण के स्पंदन अनूप
तुम रूपहीन तुम विश्वरूप

उर की अनंत अभिलाष लिए
जर्जर जीवन की आस लिए
मिलने का चिर-विश्वास लिए
मैं ढूँढ़ रहा हूँ तुम्हें विकल

पागल

मैं पागल जग में घूम रहा
जग में रहकर भी दूर-दूर
अपनी मस्ती में झूम रहा
कोई लेता चुटकी मुझ से
कोई देता है मधुर-प्यार
कोई हँस देता देख मुझे
कोई रो देता एक बार
कोई कहता मत छेड़ इसे
गाता है पागल बेचारा
कोई कहता गाओ पागल
गा डालो रे गायन सारा
मैं हँस देता हूँ सुन-सुनकर
वह कहता हँसता है पागल
मैं कहता आओ गीत सुनो
बस भर आते हैं दृग में जल
नित नए-नए साथी आते
सुनकर मेरा गायन जाते
कितने तो हँसते औ कितने
रोते ही तो हैं दिखलाते
अब कोई मेरा हाथ पकड़
कहता 'पागल, मेरे पागल'
तब हिल उठते हैं ओठ, हृदय
भर आता, झर पड़ता दृग जल

मैं भाग वहाँ से चल पड़ता
कुछ दूर, दूर आ जाता हूँ
अपने मन के उलझे-सुलझे
भावों का गीत बनाता हूँ
जग रोता है, मैं हँसता हूँ
इसलिए नाम पागल मेरा
इस ठौर कभी उस ठौर कभी
पागल का है चंचल डेरा

निराश

मैं निराश बैठा हूँ थक कर

प्रिय तुम को पाने अब तक मैं आया कितने रूप बदल कर!

किंतु न कहीं मिले तुम अब तक
रुका न पलभर चक्र अवनि का
निर्विराम गति से, गिरती हो
रही नियति की कुटिल यवनिका

आज शून्य में लीन हो रहा कंपित-सा मेरा निर्बल स्वर
जाने कब से हूँ पुकारता किंतु न कुछ आया है उत्तर

खोज रहा हूँ मैं युग-युग से
ले उर में कितनी अभिलाषा
हैं कितने सागर, सर, पथ में
किंतु रहा मैं अब तक प्यासा

थका खोजकर प्रिय तुम को मैं गहन, गुहा, गिरि, अवनी, अंबर
बोलो कहाँ-कहाँ जाऊँ अब लिए दग्ध, चिर-व्याकुल अंतर

युग-युग की ले प्यास हृदय में
युग-युग की ले आस हृदय में

खोज रहा हूँ प्रिय तुम को मैं
ले असीम विश्वास हृदय में

कण-कण से मैं पूछ रहा हूँ जितने मिले आज तक पथ पर
मिलने की आतुरता कितनी रुका न प्रिय मैं अब तक पल भर

उर की व्यथा गीत बन निकली
गूँज रही है वन उपवन में
शिथिल हो गए बंध प्राण के
लीन हो रहे सूनेपन में

तम मज्जिन पथ, भीषण-सागर, भ्रांत पथिक मैं बैठा तट पर
उद्वेलित-लहरें उर में हैं, नयनों से झरता है निर्झर।

मैं उदास बैठा हूँ थक कर।

जीवन-नौका

लो कर्णधार यह नाव चली
हिलकर, डुलकर, कुछ डगमग-सी
फिसली, सम्हली, मचली, निकली
लो कर्णधार यह नाव चली

यह विश्वधार सुंदर चंचल
अगणित-लहरें, सीमित संबल
प्यासी आशा जिसके प्रवाह
मोहक तरंग, आवर्त प्रबल
जीवन-नौका को ठेल गई
चुपके-से एक हवा पगली

नाविक, सोया था यह यात्री
नादान, सरल शैशव के क्षण
खो गए स्वप्न से, नव यौवन
के जाग उठे मधुमय कंपन
जग उठा पुलक कर आरोही
चौंका, रे यह तो नाव चली

सायं के दीप जले झिल-मिल
लघु-लघु प्रकाश शीतल सुंदर
बीती संध्या, बढ़ गया तिमिर
नव-तरुण-ज्योति फैली खुल कर
जितना गाढ़ा जग-अंधकार
उतनी ही दीपक-ज्योति जली

निश्चित गति में बहती धारा
निश्चित लय में कहती धारा
चल आरोही बहला ले मन
वह देख नियति की चिर कारा

तंद्रिल-आँखें कुछ उठीं, उधर
आकर्षण की धूमिल-रेखा
आशा की जानी-अनजानी-सी
को मैंने उठते देखा

चल तान पाल, मत घबराकर
पीछे निहार मिटती पिछली

चल पड़ी नाव उस ओर, जगी
उत्सुकता मधुमय प्यार-पली

सुख-दुख की पुरबैया-पछबैया
आ नौका झकझोर गई
युग, वर्ष, मास, दिन, पल-पल की
आ-आकर सुना हिलोर गई
यौवन अस्थिर, बढ़ चल पागल
वह देख जरा उठती बदली

मैंने देखा चल पड़ी नाव
नाविक मेरे, प्रियतम सुंदर!
तुम जानो गतिविधि आरोही
तो आरोही तुम पर निर्भर
ले चलो जिधर जैसी मर्जी
जिस घाट उतारो बुरी भली

शत-शत तरंग उठतीं मिटतीं
नाविक, नौका डगमग विह्वल
वीरान देश, पथ अनजाना
आरोही का बस तू संबल
यह क्या जाने इन लहरों में
है कौन सरल, है कौन छली

दो डुबा इसे या लो उबार
मंजिल या दो प्रिय यहीं छोड़
अनुकूल वायु प्रतिकूल, पल
दो तान, धरो पतवार डोर
जिस ओर चलो मंजूर वही
हे कर्णधार हे शूर बली
लो जीवन की नौका निकली

मेरे तुम...!

आज मिलन की मधु बेला है मिलते जग के कण-कण गुमसुम
एक पृथक् मैं हूँ पर्दे की ओट छिपे अब भी मेरे तुम?

मेरे नयनों की कविता में
मेरे सारे भाव छिपे हैं
तेरे अधरों के बंधन में
मेरे उर के घाव छिपे हैं

तेरे बंकिम-भ्रूक्षेपों में
जीवन के अरमान छिपे हैं
तेरे नुपूर के रुनझुन में
तेरे प्यारे गान छिपे हैं

चेतनता विक्षिप्त हमारी बेसुध-सा उद्भ्रांत-हृदय है
स्मृति की निस्सीम परिधि में मेरा अपनापन भी लय है

मिलती है अंबुधि से सरिता
सरिता से निर्झर गिरि से गिर
चंद्र, यामिनी से, सागर की
लहरें एक-दूसरे से चिर

गंध पवन से, मधुप कुसुम से
मिलते अंतराय खो सारे
किंतु न मैं तुमसे मिल पाता
ज्यों न नदी के मिलें किनारे

कभी प्रेयसी कह पुकारता कभी तुम्हें कहता हूँ प्रियतम
बुरा न मानो मेरे सब कुछ? कुछ तो हो निश्चय कम-से-कम

अपने इस पागलपन में मैं
'तू-मैं' को खोए बैठा हूँ
चेतनता के द्वंद्व-कलुष
प्रेयसि-प्रियतम धोए बैठा हूँ

आओ प्रिय अब देर न समुचित
आओ मिल लें अंत समय में
विवश प्राण जाने को तत्पर हैं
फिर से नूतन-अभिनय में

जाने फिर कब तक भटकूँगा प्रिय अणु-अणु की ठोकर खाकर
कौन कहे फिर भी पा सकता या न तुम्हें अभिनय में जाकर

क्यों फिर मुझको नाज न हो ?

क्यों फिर मुझको नाज न हो ?
साथी, मैंने है यह पाया
उसके प्रेम प्यार का साया
मैंने तो जीवन-निधि पा ली
उसने अपना कह अपनाया

प्यार मिला अब शेष कहो क्या, क्यों दिल की आवाज न हो
मैं हूँ धन्य, धन्य यह जीवन, क्यों फिर मुझको नाज न हो ?

आँखों ने जाने क्या देखा
खिच आई अंतर में रेखा
मस्त हुआ मैं उसको पाकर
कर न सका सुध-बुध की लेखा

अपना जो था शेष हुआ सब, क्यों दिल पागल आज न हो
उसको पाकर सब कुछ पाया क्यों फिर मुझको नाज न हो ?

किंतु मुझे तो कुछ न याद है
कैसे उसका प्यार मिला रे
पहले मैंने हृदय दिया
या पहले मधु-संसार मिला रे

केवल पाया मैं न रहा 'मैं' मैं की अब आवाज न हो
अपने को खोकर पाया है, क्यों फिर मुझको नाज न हो?

पागल, मोह रूप का होता
जिसमें पलभर को दिल रोता
यह तो पावन-प्रेम कि जिसमें
विरह-मिलन का अमृत सोता

स्वर्ग-कुसुम-सा निर्मल है यह साथी रे भ्रम आज न हो
रूपजन्य आसक्ति नहीं यह, क्यों फिर मुझको नाज न हो?

मोह, मोह है, प्यार नहीं है
आत्मा का आधार नहीं है
प्रेम ईश का धवल-धरोहर
मानव का अधिकार नहीं है

जो उसको वासना-पंक से पंकिल कर दे, लाज न हो
इसमें विरह-व्यथा, न वासना क्यों फिर मुझको नाज न हो?

मेरे उर में पागल कवि है
कभी चाँद है कभी सु-रवि है
मिली चिरंतन मधु प्रकाशमय
कवि को 'उसकी' कोमल छवि है

शीतल-उष्ण किरण से सज्जित क्यों मेरा यह साज न हो
कभी मिलन है, कभी विरह है, क्यों फिर मुझको नाज न हो?

सिद्धि

आज न क्यों मैं पागल होऊँ
दुनिया की सुधबुध को खोऊँ
उसकी पूजा को प्राणों की
क्यों न आरती आज संजोऊँ
मुझको उसका प्यार मिला है
स्वप्नों का संसार मिला है
'तुम मेरे हो' आज मुझे यह
उसका प्रिय उद्‌गार मिला है
आँखों से होकर उतरी है
उर में प्रिय तसवीर किसी की
जीवन की यह अमिट-छाप है
हो सकती तकदीर किसी की?
अमर-प्रेम की मधुर-रागिणी
आज हमारे उर में बजती
किंतु न जिसमें कभी वासना-
के नूपुर की झंकृति सजती
एक + एक = दो झूठ हुआ रे
एक एक मिल एक आज है
यही निराला गणित प्रेम का
मिला कि जिस पर मुझे नाज है
उसको पाकर सब कुछ पाया
क्यों न अधूरापन निज खोऊँ
उस सागर में दग्ध-हृदय यह
क्यों न पुलककर आज डुबोऊँ

कवि तुम को तो विष पीना है

कवि, तुम को तो विष पीना है
किया देव-दानव ने मिल यह युग मंथन
जिससे निकला है वह अमृत, यह विष
अमृत तो सुर लेगा

पर विष है कठिन—हलाहल
इसको पी मृत्युंजय बन जीना है।
कवि तुमको तो विष पीना है

उधर देख तो राष्ट्र पुरुष पर दगी गोलियाँ
हाय अहिंसा के सुहाग को फूँक फाँक कर जली होलियाँ
और इधर भारत माता की छाती फटी
हुए टुकड़े हैं
टूक-टूक माँ वसुंधरा है
फूट-फूट रोता नभ मंडल
इस अजस्र-करुणाधारा में
कूद, तुम्हें ही सूचिकार! इस फटे हृदय को
सावधान होकर सीना है।
कवि तुमको तो विष पीना है

भिन्न-भिन्न हैं वाद चल पड़े
जन तबाह है, युग तबाह है, यह सारी दुनिया तबाह है।
बात-बात में क्रांति चाहिए

इनकलाब हड़ताल चाहिए
ये मिल-मालिक पूँजीपति
औ श्रमिक वर्ग के आए दिन होते हैं झगड़े
वे किसान औ जमींदार के द्वेष
सांप्रदायिक कटुता
यह वर्ण-वर्ग-विद्वेष
कि जिससे रोता भारत
रोती दुनिया
रोता युग
यह शांत करो
कुछ तान भरो
ओ गायक, तेरे ही कर में तो
मधुर-रागिणी की बीना है।
कवि तुम को तो विष पीना है।

कवि की कल्याणी

प्राची के प्रांगण से निकली
जब सलज्ज रजनी लघु गति से
अंतरिक्ष के अंतराल में
छिपी लजा कर वह दिनपति से

चला कुटी से पुरुष एक उठ
हटा कुटिल कच, दृग से देखा
द्यावा-पृथिवी में अनुरंजित
उगती आती है द्युति रेखा

जवाकुसुम-सा शोख द्वार-पट
हटा किरण वह झाँक रही है
इस स्वर्णिम प्रभात की माया
चित्र मधुर कुछ आँक रही है

पुरुष क्रूरकर्मा अँगड़ाई ले
अवगाहन को फिर सहसा
चला, वक्र-रेखा-सी कल-कल
ध्वनिमय उधर नदी थी तमसा

तरु, तृण लतिका विहग वन्यपशु
सभी पा रहे थे सुख अद्‌भुत
पथ में एक नयन-पथ आगत
क्रौंचमिथुन था प्रेम-परिप्लुत

सुखाविष्ट यों क्रौंच मिथुन को
देख प्रणय-क्रीड़ा अनुरंजित
पुरुष निमिषभर रुका प्रकृति की
मधुर भावना से हो स्तंभित

हाय उसी क्षण ब्याध वाण से
बिद्ध क्रौंच को उसने देखा

मध्यमान मन विकल हो उठा
उगी क्रांति की दुर्वह रेखा

उस निरीह का बेध अकारण
'मा निषाद' की निकली वाणी
पुरुष हो उठा कवि तब सहसा
फूट पड़ी कवि की कल्याणी

वह प्रचंड-चेतना अमर-करुणा
से नि:सृत कवि का वह स्वर
निकला लोकव्यवस्था के हित
करने नाश अनय का सत्वर

हुए राम प्रतिरूप इसी के
निज बाँहों में ले दुर्जेय-बल
मिटा अनय, मर्यादित जीवन
बना शांत यह पुनः धरातल

जिज्ञासा

क्यों मेरा हृदय मचलता है?
जब घिर आते काले बादल
रिमझिम में बूँदें आतीं, कल
जब तड़ित बिछलती है चंचल
मन क्यों मेरा हो त्वरित तरल

अलि, उसकी आलोकित-स्मृति का
ज्योति-दीप बन जलता है?

जब शुष्क-तप्त अवनी-अंबर
पर बरस-बरस पड़ता जलधर
जब अलस किरण खिलती घन पर
उगता है इंद्रधनुष सुंदर

भावों की आँखमिचौनी का
क्यों तब नव-अभिनय चलता है?

जब तरु में खिल उठते मंजर
अमराई में विह्वल पिक-स्वर
उठ कूक-हूक भरता, अंतर
का विकल विहग हो भाव-मुखर
मधु-गीत किसी का गाता है
सखि, यह संसार पिघलता है।

जब दीप-शिखा जलती उत्प्रभ
बेसुध-सा हो उद्दाम शलभ
मिटने में शत-निर्माण सुलभ
कह आलिंगन करते, निष्प्रभ

वह दीप सिहर उठता, प्रणयी का
गत इतिहास बदलता है।

जब सांध्य-गगन होता धूमिल
टिम-टिम तारे आते हैं खिल
सस्नेह ज्योति-तम जब घुलमिल
पथ को कर देते हैं झिलमिल

क्यों परदेशी को रुकने की
उर में उठती विह्वलता है!

जब चंद्र-ज्योत्स्ना की गरिमा
भरती नभ-आँगन में महिमा
आलोकित कर देती जग को
उज्ज्वल किरणों की शुचि प्रतिमा

अलि, क्यों आह्लादित-उर में भी
जग जाती तब चंचलता है?
क्यों मेरा हृदय मचलता है!

गीत

कवि का मन वह विशद गगन है।
विस्तृत नील नभमंडल की
अपरिमेय सीमा की समता
विविध रूप-वर्णों के सुललित
अभिनव की प्रतिबिंबित क्षमता
एक कल्पना-परी उड़ी है
विकल-विहग-सी तिरती जाती
यह उदार निस्सीम कल्पना
कवि को एक उसी की ममता
कवि की यह उन्मुक्त चेतना अभिव्यक्ति में आज मगन है।
कवि का मन वह विशद गगन है।

नभ में तारों भरी रात
यह राजहंस-सा चाँद, बिहँसता
ऊषा की सलज्ज मुस्कानें
छितराती निज सुघड़ सरसता

काली-काली घटा उमड़ती
बनी बलाका-पंक्ति सुरेखा
संध्या की श्रीहीन उदासी
वातायन से अमृत बरसता
घिर आया वह देख व्योम में सजल तरल बन श्यामल घन है।
कवि का मन वह विशद गगन है।

तड़ित तड़पती सघन मेघ में
शुभ्र गगन की वह स्वर गंगा
धूमकेतु विध्वंसक, आया
सुंदर इंद्रधनुष सतरंगा
अशनिपात का गर्जन-तर्जन
कवि का स्वर हुंकार कर उठा
सावधान, कल्याणी बोली
रहे न कोई भूखा नंगा

मृदु उर्मिल झंझा-सा भीषण भिन्न-भिन्न स्वर सरल गहन है।
कवि का मन वह विशद गगन है।

पूनो की उजियाली नभ में
और अमा आई तमसा वृत्त
विविध रूप के अभिनय-सी हैं
कवि की अमित कल्पना संभृत
सीमाहीन गगन में क्षण-क्षण
हैं अनंत अभिनय के दर्शन
कवि की कोमल स्वर-लहरी उठ
उमड़ चल पड़ी जग में संस्कृत

नभ अनंत, कवि मन अनंत, भावों की यह अभिव्यक्ति, लगन है
कवि का मन वह विशद गगन है।

परिशिष्ट

जयगान

उस खिलने वाले नव विहान की जय हो
वह नव विहान जिसमें नव ज्योति खिली है
वह ज्योति कि जिसमें हमको विजय मिली है
हम मुक्त, स्वतंत्र, सृजन के पथ पर आए
मिट गई कलंक-कालिमा सब पिछली है
तम के जड़ बंधन तोड़ स्वराष्ट्र गगन में
उस उगने वाले अंशुमान की जय हो
यह केसरिया जिसमें चिर त्याग भरा है
यह श्वेत कि जिसमें निर्मल राग भरा है
यह हरीतिमा शस्यों की मृदु हरियाली
जिसमें जग जीवन का अनुराग भरा है
सर्वोच्च गगन में फहरे अमर तिरंगा
उस उड़ने वाले ध्वज महान की जय हो
वह राष्ट्रपिता जिससे युग घूर्ण हुआ है
हिंसा का दंभ जगत में चूर्ण हुआ है
जिसकी सुकीर्त्ति का मुकुट पहन जननी का
उन्नत मस्तक चिर गौरव पूर्ण हुआ है
जो सत्य अहिंसा का प्रतीक था जग में
उस अमर बने प्रिय राष्ट्र-प्राण की जय हो
यह यमुना, गंगा, विन्ध्य, महान हिमालय
यह प्रिय अशोक का स्तंभ, सुदृढ़ चिर-निर्भय
यह ताजमहल औ बौद्ध गया का मंदिर
जिसकी शत-शत कंठों से निर्घोषित जय
इस तीस कोटि के प्राण, राष्ट्र की आशा
उस जनतंत्रात्मक नव विधान की जय हो

कोशी दर्पण : जनवरी 1951

सिंहावलोकन

आज बैठकर देख रहा कवि ये ग्यारह अध्याय
आजादी—अधिकारों, कर्त्तव्यों का युग-पर्याय

आजादी का यह तेरहवाँ वर्ष खोलकर द्वार
आया दायित्वों के स्वर में भर अतीत का प्यार

आँक रहा ग्यारह बीते वर्षों का संकुल-कर्म
अब तक की उपलब्धि, मुक्त भारत का उन्नत मर्म

विविध अभावों की प्रस्तुत है रेखा यद्यपि सम्मुख
किंतु विजय की ओर बढ़ रहे चरण हमारे उन्मुख

बढ़े निरंतर ज्योतिद्वार की ओर प्रगति के चरण
तिमिर-जाल को छेद, किया कनकाभ-किरण का वरण

माना चित्र अधूरे ही हैं दूर अभी है मंजिल
किंतु तूलिका तो कर में है वर्द्धमान गति तिल-तिल

अभी और बढ़ना है हम यह निश्चय जान रहे हैं
लक्ष्यवेध के लिए चुनौती युग की मान रहे हैं

किंतु सत्य है यह कि अभी तक प्रगतिपंथ पर गतिमय
चरण रूके हैं नहीं, निरंतर बढ़े जा रहे निश्चय

काल-रेत पर चरण-चिह्न ही नहीं, मील के पत्थर
हमने गाड़े हैं, उपलभ्यों के इतिहास अनश्वर

नि:संशय विजयी होंगे विश्वास मुखर है वाणी
उतरेगी भू पर अलका से स्वप्नों की कल्याणी

जगी चेतना जन-जन की अवदात

बीत गई वह दुख की काली रात
नव-स्वतंत्रता की किरणों से
प्रोज्वल प्रोद्भासित भविष्य के
पथ प्रशस्त करता, लो आया
जन-जन की आजादी का नव प्रात
तम की विभीषिका-सी छाई
राष्ट्र गगन में पराधीनता
मिटी; मिट गया अंधकार वह
विकसित मा का हुआ हृदय-जलजात
नभ के वातायन में विहँसी
घन के झिलमिल वस्त्र हटाकर
पूर्व क्षितिज के आँगन में
छब्बीस जनवरी की ऊषा सुस्नात
हँसा हिमालय विहँसी गंगा
विहँस उठे भारत जननी के प्राण
विहँसे कवि के युग से सोए गान
विहँस उठे खेतों के तरु-तृण-पात
मिली हमें युग से बिछुड़ी आजादी अपनी
मिले हमें अपने सारे अधिकार
किंतु साथ ही मिला हमें दायित्व हमारा
जगी चेतना जन-जन की अवदात

प्रार्थना

हे समस्त विश्व के पिता हमें प्रकाश दो
प्रकाश वह कि नष्ट हो कुबुद्धि की निशा
विहँस उठे प्रकाशपूर्ण ज्ञान की दिशा
कि राष्ट्र-सर में प्रेम के सरोज का विकास हो
हे समस्त विश्व के पिता हमें प्रकाश दो
बढें सदा हमारे पग सुकर्म में अभय
हमें सभी जगह सदैव प्राप्त हो विजय
कि मार्ग के समस्त विघ्न का विभो विनाश हो
हे समस्त विश्व के पिता हमें प्रकाश दो
सभी मनुष्य एक हों कि दूर भेद-भाव हो
सभी स्वतंत्र हों न विश्व पर कभी दबाव हो
अशेष जीव हों सुखी कहीं न दुख-त्रास हो
हे समस्त विश्व के पिता हमें प्रकाश दो।

धर्म और संप्रदाय के नाम पर आए दिन जो संकीर्णता बढ़ती जा रही है, उसके कारण 'रघुपति राघव राजाराम' की प्रार्थना में भी कई विद्यालयों में विरोध की स्थिति हो जाया करती है। इस प्रकार की कई सूचनाएँ मिली हैं। कवि किसुनजी ने भी, जो सहर्षा जिले के बहुद्देशीय विद्यालय, सुपौल के एक सहायक अध्यापक हैं, ऐसे ही विरोध के विचारणार्थ अधिकारियों के समक्ष यह प्रार्थना बना कर दी थी। और, तब से उक्त जिले में ही नहीं, अन्य कई जिलों में अनेक विद्यालयों में यह प्रार्थना की जाती है। इस दृष्टि से वस्तुतः यह एक अत्यंत उपयुक्त प्रार्थना है, जिसमें संप्रदायवाद की कहीं गंध नहीं है, अपितु राष्ट्रीयता और विश्व-मानवता के ऊँचे भाव की सुगंधि विद्यमान है—संपादक।

हिंद की मचल उठी तलवार

उत्तर पूरब की सीमा पर
साम्यवाद की खाल ओढ़कर
कपट भरे विस्तारवाद की
भरकर नीच दुनाली
पंचशील, बाडुंग-शांति पर
सह-अस्तित्व, लोक-क्रांति पर
पोती तूने परम नीचता की है
स्याही काली
राम-कृष्ण की जन्मभूमि पर
तेग बहादुर, राणा और शिवा की
प्यारी कर्मभूमि पर
ओ बेशरम,
अभागे,
चीनी!
कर दी हरकत बड़ी कमीनी

पर सच जानो आज तुम्हारे
पापों का घट फूटा
जान गई दुनिया
किसका अस्तित्व आज है टूटा
अर्जुन का गाण्डीव जगा है
गदा भीम की जागी
जाग पड़ा है बच्चा-बच्चा

लेकर कर में अमर पताका
मातृ-भूमि की
स्वतंत्रता का—
यह अदम्य अनुरागी
सावधान भेड़िये,
खुल पड़ी आज सिंह की आँखें
अब न शांति के कबूतरों की
दुष्ट जालिमों,
नीच बहशियों,
काट सकोगे पाँखें

जाग उठा है आज हिमालय
जाग उठा लद्दाख
मूर्ख, तुम्हारे सब मन्सूबे
हो जाएँगे राख
आज हिंद के जन-जन सैनिक
अपने दुश्मन को माटी में
मटियामेट करेंगे निश्चय
सिक्किम में, भूटान या कि लद्दाख
और नेफा-घाटी में
जगी जवानी, उबला शोणित
मचली है तलवार
आज हमारी यही चुनौती
आज यही ललकार
सावधान चीनियों,
हिंद की मचल उठी तलवार।

उग रहा सूरज

उग रहा सूरज कि मिटती जा रही है रात
जा रही है रात मिटती
फट रही तम की यवनिका
और अब तो लड़खड़ाते पाँव हैं इस अंधियाली के
उजाला आ रहा है
दूर;—वंशी के स्वरों में झूम
हिमगिरि के शिखर पर बैठ कोई
इस नए संसार की नूतन प्रभाती गा रहा है
गा रहा है यह कि जय हो, हे महान मनुष्य
कर्मशील मनुष्य जय हे सृष्टि के सम्पूज्य
हे जमाने के उपेक्षित और शोषित देव!
जय तुम्हारी बोलते भूगोल और खगोल।
अब निरे अज्ञान की यह अंधियाली मिटेगी ही
पौ फटेगी
फट रही है
स्वस्थ होंगी ये दिशाएँ
भूमि से आकाश तक सब साफ होगा
चहचहाएँगे विहग-दल
झूम पुलकेगी धरित्री
और, इस युग सरोवर के कष्ट-कीचड़ में खिलेगा
मनुज के सुख का सरल जलजात
उग रहा सूरज कि मिटती जा रही है रात।

खत्म ही होंगे मनुज के वे सभी दुख
जो कि होते आ रहे हैं चिर दिनों से
शक्तिधर इन राक्षसों के हाथ
पिस रहा संसार
और घुटकर, तड़पकर, घिसकर
कि मरती जा रही है
मनुज की यह मनुजता लाचार
आज निर्बल हो रही उनकी पकड़ है
और घटती जा रही है शक्ति
आज युग के हथौड़े का
पड़ रहा है आखिरी आघात
उग रहा सूरज कि मिटती जा रही है रात।
खून देकर धारा को जिसने बनाया सरस उर्वर
सृष्टि को जीवन दिया जिसने
कि अपने प्राण बाँटे
बन गए फिर लाल-लाल गुलाब काँटे
और झूमी खेत में वह बाली गेहूँ की सलोनी
किंतु हाय? गुलाब गेहूँ
हड़पकर, सब ले लिए उन राक्षसों ने
जो जमाने को बनाने का
बड़े ही ठसक से हैं दम भरा करते
कि जी भर चूसकर जो खून मानव के
बड़े आराम से ये खूब मोटे हो गए हैं
और, क्रमशः निज सुविस्तृत उदर में जो
हजम करते जा रहे हैं संसार को ही
किंतु अब बस...
अब सँभलकर मिल गए हैं सब जगह के खूनवाले
खूनवाले वे कि जिनका पी लिया सारा लहू
अब हड्डियों के शेष भर हैं।
आज लेकिन हड्डियों के उस निरे कंकाल में भी

आग भड़की
राख जिसमें ये बनेंगे
आज या कल
रोक सकता है न कोई
बँध गई है आज मुट्ठी हड्डियों की
जो पड़ेगी और अब भी पड़ रही है
खून के चसके हुए वे दाँत उनके टूटते ही जा रहे हैं
और वे तारे बनेंगे
जो कि पश्चात्ताप की ही आग में जलते सदा
चिनगारियों-से दीखते हैं
शून्य की उस कालिमा में बिलबिलाते
अब न टिकने पाएँगे कुछ देर भी वे
शीघ्र ही दुखपूर्ण उनका अंत होगा
मिटेंगी यह विषमता
सब एक होंगे आज के मानव
कि बस अब एक-से दुख-सुख बटेंगे
सभी होंगे सुखी औ संतुष्ट जीवन
रह न पाएगा कहीं कोई कभी अब
मनुज विह्वल, वस्त्र-हीन, विपन्न
या कि निर्धन, निरानंद, निरन्न
और तब इन मंदिरों के देवता से
मस्जिदों, गिरजाघरों के
गौड या अल्लाह से ऊँचा रहेगा
हाड़-माँसों का बना यह मनुज सर्वश्रेष्ठ
लिख रहा पूरब क्षितिज पर
नए युग का मधुर अरुणिम प्रात
लाल स्याही से यही कुछ इस तरह की बात
उग रहा सूरज कि मिटती जा रही है रात।

विद्यापति के देश में : 1951

पुरुष गीत

(उत्तम पुरुष—मैं)

मैं क्या हूँ...
क्या कहूँ
दुख होगा सुनकर
फिर भी कह देता हूँ बातें कुछ चुनकर
पढ़ना और लिखना समाप्त हो जाने पर
दिये बहुत फेरे
और भरी बहुत चौकड़ी
घूमे कई दरवाजे
दिये कई आवेदन
किंतु नहीं मिली जब
मन की कोई नौकरी
तो मन की अधमरी आशा को दफनाकर
डाल दिया ऊपर से संतोष का पत्थर
हो गया कवि
और लिखने लगा गीत
छपाई किताबें
पर बिकीं नहीं मीत
और कई स्कीमों पर चक्कर फिर काटे
ख्याली पुलाव के लुकमे भर चाटे
भावों से मनके में गढे फिर काटे
लेकिन वह किस्मत नहीं
पड़ी मेरे बाँटे
और अब क्या हूँ

क्या कहूँ?
दुख होगा सुनकर
सोचता हूँ, क्या होगा पढ़कर या गुनकर
यों 'मैं' हूँ उत्तम पुरुष
यह व्याकरण है कहता
और मैं इस व्यंग्य का आघात बहुत सहता
वैसे तो उत्तम पुरुष
उसे लोग कहते हैं
लक्ष्मी का लाड़ला वाहन जो रहता

(मध्यम पुरुष—तुम)

तुम हो बस तुब प्यारे
मध्यम पुरुष हो तो
लेकिन अपना तुम
अनुपात जरा सोचो तो
रहते हो कमरे में
कमरा है घर में
घर है मोहल्ले में
मोहल्ला नगर में
नगर है राज्य में
और राज्य भी है देश में
देश कई पृथ्वी पर
छोटे-बड़े वेश में
एक हजार पृथ्वियाँ भर दें किसी घड़े में तो
केवल एक शुक्र के बराबर घड़ा होगा
ऐसे यदि एक हजार शुक्र मिल जाएँ तो
उससे भी सूर्य यह बंधु, बड़ा होगा
और इस सूर्य से कितने नक्षत्र बड़े
ऐसे हैं अनगिन सूरज औ तारे
ये सारे नक्षत्र मंडल एक ही बह्माण्ड में हैं
और हैं अनेक बह्माण्ड सुनो प्यारे

सोचो तो हैं फिर कितनी पृथ्वियाँ
कितनी ही भूमियाँ
कितनी ही सृष्टियाँ
शायद अब तेरी समझ में यह बात आई
यह है अनुपात तेरा
इस विराट से भाई ?
तब भी बस तुम हो कि
स्वार्थ, अहं, ईर्ष्या से
अपने को सबका स्वामी
तुम कहते हो
दूसरों से घृणा
और तुच्छ दृष्टि रखकर तुम
घोर अविश्वास में
लीन बने रहते हो
इस असीम सागर की
एक नन्हीं बूंद हो; पर
दुनिया की कौन कहे
आदमी के भी साथ बंधु
तुम न रह सकते ही

(अधमपुरुष—वह)

वह श्रीयुत डैस...डैस...
जी हाँ, हैं अन्य पुरुष
उत्तम और मध्यम के बाद का
अधम पुरुष
अपने को खुलेआम
कम्युनिस्ट कहते हैं
और इस तरह
अंतरराष्ट्रीय मामलों में
रूस या चीन के साथ-साथ बहते हैं
राष्ट्रीय मामलों में

पूरी तरह
श्रीयुत वहाँ
श्रीमती इंदिरा के विचारों के साथ हैं
और जब प्रांतीय मामला
उग जाता है
बेखटके जनसंघ से
मिला लेते हाथ हैं
दूसरों के घर के मामले में
'मार्क्स' ठीक
अपने घर में तो
बस 'मनु' ही सही हैं
भूदान, श्रमदान
संपत्ति दान का दम भरते
अपने शहर के
बड़े नेता वही हैं
वह
श्रीयुत डैस...डैस..

22.01.1958

तीन छोटी कविताएँ

मन:स्थिति

यह निर्जन वन
पगडंडी-सा शून्य पड़ा है
मेरा जीवन
राह भूलकर
खोया-खोया
भटक रहा व्याकुल अंतर्मन

बनियाँ

सेठ सूरजमल
सुबह-सुबह नहा-धोकर
लाल-लाल चाय पी
खोलता दूकान
दिन भर है करता व्यापार
नाना प्रकार
शाम होते ही दुकान बढ़ाकर
काली-सी चादर पर
फैलाकर रेजगारी
गिनता भर रात।

मेरी श्रद्धा

सागर है रत्नाकर
अमित वारि-राशि

मेघ बरसता
निर्झर झरता है
नदियाँ गिरती हैं
सागर भरता है
लक्ष्मी का नैहर है, विष्णु की ससुराल
किंतु मेरी सारी श्रद्धा
उस छोटी चिड़िया पर है
जो अपने अंडे के चोर को
अपनी छोटी चोंच से
उलीचकर सुखा देना चाहता है।

प्राच्यप्रभा : अक्तूबर 1967

तीन कविताएँ

अकाल

इस संकुल नींद में
किसने कही बात
जो मैं हूँ देखता
स्वप्न साँझ-प्रात
महगी में नहीं रहे
सपने आश्वस्त
व्यक्तित्व के खंडहर में
जीवन है त्रस्त
ले रहा सत्य से
प्रत्यय प्रतिशोध
अर्थ को नहीं रहा
आज शब्द-बोध।

निर्लज्जता

मुँह पर लगाकर नकाब
घूम रहे नि:संशय लोग
स्नो पाउडर से छिपाकर
भूल गए असलीयत
सहज रूप में सब कोई
एक दूसरे को ठगते हैं
किंतु दूसरा नहीं तो
खुद को पता है

अपनी कुरूपता असंदिग्ध जन्मजात

बलात्कार

गुस्साओ मत
दाँत पीसकर बेकार दाँत घिस लोगे
मैं जो कहता हूँ
वह पूर्वग्रह हीन है
कड़ुआ है
सहज किंतु
तुम हो चोर
झूठे
दंभी
कहने और करने में
तुम्हारे अलावा हैं मुखौटे
तुम हो बेईमान
और व्यभिचारी
बस इतना सह लो
दिन को नहीं तो रात में ही
अंधेरे में भी स्वीकारो
नहीं तो कभी
कह देता हूँ
उठकर मैं
अपने ही साथ तुम्हारा भी
परदा फाड़ दूँगा।

लेकिन, राजकमल जीता है

किसने कहा कि वह मर गया
यह कहना झूठ है
वह जीता है
जीता ही रहता है
मौत का अंधेरा
जीवन के सूर्य को
हर रोज मारकर भी
असफल ही रहता है
वह जीता है
जीता ही रहता है

हर रोज सुबह में
अंधियाली चीर कर
होता है असंदिग्ध
ज्योति का विस्फोट
ऐतिहासिक सत्य है
जिंदगी की चोट

मनुष्य है सत्य
मनुष्य है शिव...सुंदर
मनुष्य है तथ्य
और उसका शिल्प
उसकी सृष्टि

गद्य
पद्य
चित्र आदि
रचना-समष्टि
प्वाइंट ऑफ ऑर्डर
फाइल पर का नोट
जुलूस के नारे
चुनाव का वोट
इजलास पर का जजमेंट
दस्तावेज का ड्राफ्ट
माँ-बाप
औरत-बेटा
सबको लिखी चिट्ठियाँ
एक-एक शब्द
अर्थ
एक-एक अक्षर
रुदन-हास्य-गान का
एक-एक स्वर
उसके सिद्धांत और उसकी क्रांति
उसका बलिदान, त्याग और प्रगति
समष्टि या व्यष्टि
चाहे हो अस्वीकृति
चाहे स्वीकार
बन गया सार्वजनीन
विश्व की संपत्ति
जिंदगी की आग में
मरण जल गया
किसने कहा कि वह मर गया।

(राजकमल के जीवन-दर्शन पर आधारित।)

07.11.1967

सर्वेषामविरोधेन

किसी फूल
किसी निर्झर
किसी वन्या का गीत
जो गाता है
उससे मेरा कोई विरोध कहाँ है?

मगर पुराने प्रतीक और संदर्भ
जिसकी कल्पना के विषय हैं
अज्ञान या आज्ञान
दुहराव ही जिसकी रचना है
उसमें कोई शोध कहाँ है?

गतिमान, इतिहास, धन्य रहो
पुराने उच्चैः श्रवा पर चढ़ना
तुम्हें पसंद है
तो मुझे तुमसे कोई प्रतिशोध कहाँ है
विरोध कहाँ है?

किंतु
श्रुतिरसिकों की वाहवाही से गर्वित
मंचाधीशी काव्य की
'पराजित स्वर' के अतिरिक्त
दूसरी संज्ञा क्या है?

और जो परंपरा का जंगल उजाड़ कर
नई फसल को सींचता है
तो तुम्हारे सिर में दर्द क्यों होता?

आज के युगसत्य से परिचय करो
हे गीतबंधु
जरा जीवन के यथार्थ को समझो
पहचानो—
यह कुंठित
उलझी-उलझी
संत्रस्त साँस
तुम्हारी है या नहीं?

प्राच्यप्रभा : मई-जून 1969

अता–पता

तुम कौन हो
यह मैं क्या जानूँ
कैसे दूँ तुम्हारा परिचय
अता–पता
और उसकी आश्वस्ति
जब मैं खुद को नहीं पहचानता
कि मैं कौन हूँ।

वैसे, मैं आज चालीस साल से ज्यादा हुआ
अपने साथ रहता
हमेशा नहीं तो सब रोज
शायद थोड़ी देर को जरूर
और इतना जानता हूँ कि मेरे भीतर में
खोया हुआ एक व्यक्ति है।
खुले आकाश में बिजली चमकती है
और वह प्रतीत होती है।

जब वासंती वातास के झोंके
या चैत्रक्षपा के जोश में
मेरा कोई मित्र
अपनी प्रेमकथा के
किसी रोमांस का वर्णन करने लगता है
तो मैं तटस्थ बना

घुस जाता हूँ अपने खोल में
रहता हूँ तब मैं और मेरा वह व्यक्ति
बस; केवल तभी
मैं निरावरण हो
उससे तादात्म्य हो जाता हूँ
उसे जानता हूँ, पाता हूँ।

खोल तो तुम्हें भी है
लेकिन—
क्या तुम्हारे अंदर भी व्यक्ति है?
क्या तुम्हें भी पता है...?

प्राच्यप्रभा : अगस्त-सितंबर 1969

कुछ परिभाषाएँ

जीवन

एक अपरूप शक्ति
जिसके आने पर होता उत्सव-समारोह
जाने पर छाती पीटता है मोह
रहने पर होती है विवशता की वेदना
एक निर्मोही अतिथि बना।

भूख

आदिम युग का एक अशरीरी दैत्य
जो सारी दुनिया में व्याप्त है
चेतना की गति है
पर असमाहित समस्या है
सर्वथा असमाप्त है
समुद्र-मंथन का अमृत पीकर
अजर-अमर सार्वभौम
बना हुआ है दुष्ट
सबको बेचैन बनाए रहता है
कुरूप, अश्लील, भयंकर, असंतुष्ट।

प्रेम

एक अभीप्सित व्यापार
किसी सुंदर देवता का वरदान
जिसके नाम पर होता आया है
ऐतिहासिक निर्माण
प्रलयंकर ध्वंस
पाने को सब कोई रहता बेहाल
पाने पर हो जाता बिल्कुल बेसम्हाल।

दम्पत्ति

एक जोड़ा पंछी
विभिन्न दिशाओं से आकर
किसी पेड़ की डाल पर
बड़ी तन्मयता से नीड़ बनाते हैं
आँधी-तूफान से आतंकित
बंदर बिल्ली से आशंकित
पाँखों में दायित्व
आँखों में कल्पना
चोंच में है दाना और मन में अनुराग
परवाह नहीं छिपा रहे
कहीं कोई नाग!

मृत्यु

एक शांतिदायक सत्य
चिरायते की तरह कड़वी घूँट
पीना नहीं चाहता कोई
मगर सभी पीते हैं

पीने के लिए ही जीते हैं
सारी यंत्रणाओं की
एक मात्र महौषधि
सबका परम मित्र
जीवन की अवधि
कौन कहे किसे कहाँ
कब वह मिल जाय?

आत्मनेपद

मानो अपने को राम भले
मुझको न तनिक आपत्ति
किंतु न मैं मारीच
मारकर तुम सींकी का वाण
उड़ा दोगे शत योजन दूर
मैं हूँ तेज:पुंज प्रखर मार्त्तण्ड
यदि चाहो मुझको करना आक्रांत
तो संपाती सा बनने को ढूँढते
रहो मित्र, निश्चयतः सदा वृतोऽस्मि

विहान

समाधिग्रस्त जनता
किसी नई बात से बेतरह
भड़कती है
लाल कपड़े देखकर
बिदके ज्यों भैंस
तीन सिंहों के स्तूप में
चेतना है बंदिनी
सचमुच हे अहले वतन
हम खूब-खूब खुश हैं
योजना के फाइल में है
सारा देश बंद
अगरबत्तियाँ दे रहीं
समाजवादी गंध

सच तो यह है ही कि
कहीं अगर रोशनी टिमटिमाती है
तो अंधेरा भी बढ़ा ही है
आज से बाईस साल पहले की
बनिस्बत।

आज भी इस धरती का
हिया है उदास
चारों ओर कर रहे

शब्दों के प्रेत अट्टहास
गेहूँ की बालियों पर
हथौड़ा है गिर रहा
बरगद के पेड़ पर
वायस-दल चिर रहा
हंसिया है काट रहा
अंधाधुंध सिर
झोपड़ी बुरी तरह
आज रही गिर
तारा अंधेरे में आसमान चढ़ा था
धरती से दूर था
इसलिए दुख-दर्द धरती का
किताबों में पढ़ा था
वह भी गया भूल
गिर रहा उल्का की धूल
दीपक प्रकाश से कतराता है
उसके तले में इतना
अंधियारा है कि
ठीक से नजर नहीं आता है
बैलों की जोड़ी थी प्रजननहीन
शुरू ही ही आशा थी क्षीण
संतान कहाँ से हो
उसके भी हो गए हैं
दावेदार दो

बूढ़े दोनों को लग गया स्वाद
जिस धरती पर कभी बीज बोये थे
उसके ही पौधों को चट कर गए
क्या होगा देने से पानी और खाद
कैसी विडंबना है

प्रतीक सारे छोड़ भागे अर्थ
हो रहा अनर्थ
अलबत्ता स्वराज्य अब
हो गया है बालिग
फिर भी हकलाता है
भीख की रोटी खा-खाकर
स्वाभिमान खो बैठा है
दृष्टि नहीं उठाता है
कुंठित है
कुछ भी यह सोच नहीं पाता है
इसी से अब लाजिम है
सब कुछ का भंजन
नए सिरे से हो सके
जिससे विहान
मिले नई जान।

09 अप्रील 1970

• • •